चतुर्थ अध्याय

मेधिलीशरण गुप्तजी के खंडकाव्यों का वस्तुगत अध्ययन

4.1 खंडकाव्य का स्वरूप एवं वर्गीकरण

4.1.1 संस्कृत काव्य शास्त्र में खंडकाव्य की अवधारणा

अधिकांश संस्कृत आचार्यों ने प्रबंध काव्य के स्वरूप रूप से दो भेद किए हैं- महाकाव्य और खंडकाव्य। संस्कृत काव्यशास्त्रियों ने प्रबंध तथा महाकाव्य की विस्तृत चर्चा की है, परंतु खंडकाव्य पर कम प्रकाश डाला है। वास्तव में खंडकाव्य प्रबंध काव्य का ही एक रूप है। उसका परिणाम प्रबंध काव्य के अंतर्गत ही होता है। महाकाव्य संपूर्ण जीवन को आश्रय करने वाला है, तो खंडकाव्य उसके एक ही पश्चा के लेखा-चलने वाला काव्य है। खंडकाव्य वर्षपति जीवन के ही अंग को लेकर चलने वाला काव्य है। खंडकाव्य वर्षपति जीवन के ही अंग को लेकर चलने वाला है तथापि वह अपने आप में पूर्ण होता है, और उसकी अनुभूति भी पूर्ण होती है। अर्थात् उसमें जीवन का एक ही खंड लिया जाता है, किंतु वह खंड अपने में स्वतंत्र पूर्ण होता है। डॉ. शशकल दुबे के शब्दों में- "खंडकाव्य के 'खंड' शब्द का यह अर्थ कसापि नहीं कि वह बिखरा हुआ अथवा किसी महाकाव्य का एक खंड है। प्रत्युत्त सिंह 'खंड' शब्द उस अनुभूति के स्वरूप की ओर संकेत करता है जिसमें जीवन अपने संपूर्ण रूप में अधिकारिक का न प्रतापित कर आंशिक या खंड रूप में ही प्रभावित करता है। खंडकाव्य में अनुभूति का खंड जिसे जीवन-खंड से आता है वह जीवन अपने में पूर्ण होता है और वह अनुभूति भी उसी भांति अपने में पूर्ण होती है।' 'खंडकाव्य का रचयिता महाकाव्यकार की भांति अपनी उस सरस्याधिणी प्रतिभा के बुद्धि पर युग के बीच से जिसी महत्त्व प्रचरित को देखकर, उसकी सर्वस्वपूर्ण प्रतिष्ठा कर, युग को कोई महत्त्व संबंधित नहीं देता। वह तो कभी किसी पौराणिक या इतिहास प्रभाव प्रचरित के जीवन के तथा कभी-कभी कल्याण के द्वारा प्रतिष्ठित चरित्र के जीवन खंड को लेकर ही काव्य निर्माण करता है। किंतु उसकी इस अभिव्यक्ति में अनेक परिस्थितियों में पंडे हुए मानव के अनेक अवस्थाओं का चित्रण अनिवार्य नहीं होता। यही कारण है कि खंडकाव्य उस कहानी के समाप्त है जिसमें एक ही घटना का स्वतंत्र आरंभ किया जाता है। जीवन के किसी प्रभावपूर्ण बिंदु को लेकर कहानी का समाप्त होता है। उसमें समय काल और प्रभाव की एकता प्रमाणात्मक होती है। इसी प्रकार खंडकाव्य जीवन के किसी एक विशेष अंग की अनुभूति के बिंदु को लेकर विकसित होता है। संस्कृत काव्यशास्त्र के स्थानों में
खंडकाव्य की उतनी व्याख्या नहीं हुई जितनी महाकाव्य की। खंडकाव्य के स्वरूप को लेकर कतिपय विद्वानों की अवधारणाएँ इस प्रकार हैं—

### ४.२.१.१ आचार्य रूपट

रूपट ने सभी प्रबंधों (प्रबंधकाव्य, कथा, आर्याविष्कार आदि) को महत्त्व और लघु इन दो प्रकारों में विभक्त कर उनका अंतर इस प्रकार बताया है—

“तत्र महान्तो देवस्य विश्वस्तेष्य विधायते।
चतुर्वर्णं स्वर्गं रसं: क्रियन्ते काव्यं स्थानानि सम्बन्धं।।
ते लघुवं विश्वेत्य श्रेष्ठन्यतमो भवेच्यतुर्वर्गान्तः।
असमान्यानि रसायं च सम्यक्कर्मसयुक्ता:।।”२ (काव्यालंकार ८/५/६)

अर्थात् इसमें चतुर्वर्ण-फल में से कोई एक और अनेक रस असमग्र रूप में या एक रस समग्र रूप में होता है। इस तरह सर्वप्रथम रूपट ने प्रबंध काव्य के दो रूपों— महान काव्य (महाकाव्य) और लघु (खंडकाव्य) पर मौलिक दंग से विचार किया है।

### ४.२.१.२ आनंद वर्षन

आनंद वर्षन ने (ध्यानलोक-३१७) काव्य भेदों का विवरण देते हुए प्रबंधकाव्य के लिए सर्वबंध शब्द का ही प्रयोग किया है। यथापि कथा के भीतर उन्होंने खंडकथा, परिकथा और सकलकथा का उल्लेख किया है, पर सर्वबंधकाव्य के भीतर महाकाव्य, खंडकाव्य आदि का रूप विभाजन नहीं किया है।३

### ४.२.१.३ आचार्य विश्वनाथ

कविराज विश्वनाथ ने ‘साहित्य दर्पण’ में खंडकाव्य का इस प्रकार उल्लेख किया है—

“भाषा विभायात्मकान्यं सर्वसमुच्छितम्।
एकार्ध्यम्: पधः संप्रभामधुर्वर्जिनितम्।
खंडकाव्यं भवेच्यः शैवः देवानुसारिः।।”८

अर्थात् किसी भाषा या उपभाषा में सर्वबंध एवं एक कथा का निरुपक पद ग्रंथ, जिसमें सभी संधियों न हों, काव्य कहलाता है और काव्य के एक अंश का अनुसरण करनेवाला खंडकाव्य होता है। इस प्रकार आचार्य विश्वनाथ ने ‘खंडकाव्य’ शब्द का प्रयोग पहली बार किया है।

विश्वनाथ के उपरांत किसी अन्य आचार्य ने उनकी खंडकाव्य की कल्पना को आगे नहीं बढ़ाया।

211


4.1.2 हिंदी काव्यशास्त्र में खंडकाव्य की परिभाषाएँ

हिंदी के विभिन्न विद्वानों ने खंडकाव्य के स्वरूप, लक्षण आदि संबंधी अपनी मान्यताएँ व्यक्त की हैं -

4.1.2.1 आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

"महाकाव्य के ही घन पर जिस काव्य की रचना होती है, पर जिसमें पूर्ण जीवन न प्राप्त करके खंड जीवन ही प्राप्त किया जाता है, उसे खंडकाव्य कहते हैं। यह खंड जीवन इस प्रकार व्यक्त किया जाता है, जिससे वह प्रस्तुत रचना के रूप में स्वतः पूर्ण प्रतीत होता है।" ।

4.1.2.2 बाबू गुलाबराय

"खंडकाव्य में एक ही घटना को मुख्यता दी जाकर उसमें जीवन के किसी एक पहलू की ढाँकी-सी मिल जाती है।" ।

4.1.2.3 डा. भगीरथ मिश्र

(1) "खंडकाव्य वह प्रबंध काव्य है जिसमें किसी भी पुरुष के जीवन का कोई अंश ही वर्णित होता है, पूरी जीवन-गाथा नहीं। इसमें महाकाव्य के समग्र अंग न रहकर एकाध अंग ही रहते हैं।"

(2) "प्रबंध काव्य का दूसरा भेद खंडकाव्य या खंड प्रबंध है।... इसमें प्रमुख विषयमता यह है कि इसमें कथावस्तु संपूर्ण न होकर उसका एक अंश ही होती है। प्रायः जीवन की एक महत्व पूर्ण घटना या दृश्य का मार्मिक उत्पादन होता है और अन्य प्रसंग संयोग में रहते हैं।"

4.1.2.4 केशवचंद्र 'सुमन'

"खंडकाव्य में जीवन के एक रूप का वर्णन किया जाता है और उसमें महाकाव्य की किसी एक घटना को ही काव्य का विषय बनाया जाता है। किंतु यह घटना अपने-अपने में पूर्ण होती है। जीवन की विभिन्नता में से किसी एक पक्ष का चुनाव कर उसका वर्णन करना ही खंडकाव्य का मुख्य उद्देश्य होता है।"

4.1.2.5 आचार्य बलवेद उपाध्याय

"यह काव्य जो मात्र में महाकाव्य से छोटा, परंतु गुणों में उससे कथमपि शून्य न हो, खंडकाव्य कहलाता है।... महाकाव्य विषय प्रधान होता है, परंतु खंडकाव्य मुख्यतः विषयी-प्रधान होता हैं, जिसमें लेखक कथानक के स्थूल ढाँचे में अपने वैयक्तिक विचारों को प्रसंगानुसार वर्णन करता है।" ।

212
4.1.2.6 डॉ. सरनामसिंह शर्मा

"काव्य के एक अंश का अनुसरण करने वाला खूंटकाव्य होता है। उससे जीवन की पूर्णता अभिव्यक्ति नहीं होती। उसकी रचना के लिए कोई एक घटना अथवा संबंधित मात्र प्रयास होती है।" 13

4.1.2.7 डॉ. कमलाकांत पाठक

"खूंटकाव्य लघु कथा-काव्य होता है, जिसमें जीवन की व्यापकता नहीं होती, कथानक का विस्तार नहीं होता, चरित्र को विशाल भूमिका नहीं दी जा सकती और वर्णनों को वैविध्यपूर्ण नहीं बनाया जा सकता। उसका कथानक एक प्रमुख घटना का ही अनुसरण करता है।" 13

4.1.2.8 डॉ. शंकुलता दुबे

"वह प्रथंभकाव्य का एक दूसरा प्रकार है, जिसमें मानव जीवन के किसी एक साधारण अथवा मार्मिक पक्ष की अनुभूति का अभिव्यक्ति काव्यात्मक रूप में होता है।" 13

4.1.2.9 डॉ. नोरबिंद तिरुगामात

"महाकाव्य में जीवन का सर्वार्थ सिद्ध होता है। किंतु खूंटकाव्य में उसके किसी रोचक और मार्मिक पक्ष का ही उद्धारण किया जाता है। उसके लिए कभी किसी रोचक, रचनात्मक भावोबद्ध काव्य, परिप्रेक्ष्य का प्रसंग की कल्पना करता है। वह उसको अपने भौतिक-सीवत्व से प्रभावित और मार्मिक पक्ष का बना देता है।" 14

4.1.2.10 डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा

"भीते रंग से कहा जा सकता है कि खूंटकाव्य एक ऐसा पथ्यकथा काव्यकाव्य है, जिसके कथानक में इस प्रकार की एकतम अन्वेषण हो कि उसमें अप्रासंगिक कथाएं सामान्यतया अन्तर्भूक्त न हो सकें, कथा में एकांगिता; साहित्य वर्णन के शब्दों में एक वेदीयता हो तथा कथा-विन्यास में क्रम-आरंभ विकास, चरसम्भव और निष्ठित उद्देश्य में परिणाम हो।" 13

4.1.2.11 डॉ. राजेंद्र बिजवेरी

"महाकाव्य के एक अंश का अनुसरण करनेवाला काव्य महाकाव्य के लिए आवश्यक बस्तुओं में से निम्नें सबका समावेश न हो और अपेक्षात्मक छोटे जीवन केंद्र का प्रवंड चित्र उपस्थित करे, वह खूंटकाव्य है।" 16
रुत्तर नाला लंग

“खंडकाव्य में मानव-जीवन के किसी एक सरस एवं मार्मिक अंश का थोड़े में किंतु स्पष्ट वर्णन किया जाता है। इसमें जीवन की एक घटना रहती है, इसी से खंडकाव्य को जीवन की एक सुंदर झाँकी भर कहा जा सकता है।”

इस प्रकार खंडकाव्य की उपयुक्त परिभाषाओं का अनुशीलन करने पर पता चलता है कि, खंडकाव्य को रुत्तर ने लघुकाव्य कहा है। लघुकाव्य या खंडकाव्य के संबंध में रुत्तर का यह कथन सर्वथा सुविधा है कि उसमें चतुर्वर्ग फल में से किसी एक फल को उद्वेष्य रूप में अपनाया जाता है। लेकिन रुत्तर की परिभाषा आज के खंडकाव्य पर पूर्णतया घटित नहीं हो सकती। कविराज विश्वनाथ की परिभाषा यह है कि जिस काव्य में एक देश या अंश का अर्थात् एक घटना का अनुसरण किया जाए अथवा जिस रचना में जीवन के अंग विशेष का निरूपण हो, वह खंडकाव्य है। इसका अर्थ यह हुआ कि एकवर्गी कथा का यह प्रयोजन वर्णन, जो स्वतः पूर्ण हो खंड काव्य है। डॉ. शंभुनाथ सिंह के अनुसार आचार्य विश्वनाथ की यह परिभाषा स्पष्ट नहीं है, क्योंकि भी-भी किसी चरित्र के खंड जीवन का चित्रण करनेवाले काव्य भी महाकाव्य होते हैं। निस जीवन-खंड को निरूप किया जाता है यदि उसमें महत्ता है और उस काव्य की शैली भी उदात्त और गरीबामयी है, तो उस काव्य को महाकाव्य के गुणों से युक्त मानना चाहिए।”

हिंदी के विद्वानों ने भी मौलिक रूप से खंडकाव्य की परिभाषा में बांधने या उसका स्वरूप निर्धारण का प्रयास न करके केवल आचार्य विश्वनाथ की परिभाषा की व्याख्या की है।

“हिंदी काव्यशास्त्र का इतिहास” में डॉ. भगीरथ मिश्र ने खंडकाव्य के स्वरूप को निर्धारित करने की सफल पेशकश की है। उनके मतनुसार खंडकाव्य में पूरी जीवन गाथा का निरूपण नहीं होता। किसी भी पुरुष के जीवन का कोई अंश वर्णित नहीं है। अपने “काव्यशास्त्र” नामक ग्रंथ में भी मिश्र जी कथावृत्त की एकांतिता पर जोर देते हैं। कथा संगठन, वस्तुवर्णन, भाव-वर्णन या चरित्र-चित्रण की भी आवश्यक मानते हैं। आचार्य विश्वनाथ की परिभाषा का अनुसरण करते हुए हिंदी में विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जी ने अपने “वाङ्मय विमार्य” में प्रवंध काव्य के तीन पंद्रह विषय उल्लिखित हैं— महाकाव्य, एकत्त्व काव्य और खंडकाव्य। खंडकाव्य की परिभाषा करते हुए उन्होंने आ। विश्वनाथ के बताए हुए लक्षणों का दी उल्लेख किया है। इसी के अनुसार ‘हिंदी साहित्य कोश’ तथा ‘साहित्य शास्त्र का परिभाषाशील शब्द कोश’ आदि की परिभाषाओं है। खंडकाव्य के स्वरूप की चर्चा करते हुए डॉ. शंकुकेल्य दुबे लिखते हैं— “खंडकाव्य लक्ष्यकालार्थी क्षणों की अनुभूति की अभिव्यक्ति है। उसका
परिगणन प्रबंध काय्यांतर्गत होता है। किंतु जीवन के ये लेखित श्रण जीवन के विस्तार के अनुसार आपस में भिन्न होने के कारण कभी एक स्थान पर खंडकाव्य को जन्म देते हैं, कभी महाकाव्य को। महाकाव्य संपूर्ण जीवन को आश्रय करते हैं। खंडकाव्य उसके एक ही पथ को लेकर चलते हैं, गद्दी के क्षेत्र में जो अंतर उपन्यास और कहानी में है, वसा ही भेद महाकाव्य और खंडकाव्य में पाया जाता है। खंडकाव्य शब्दांक जीवन के एक ही अंग को लेकर चलता है तथा अपने में पूर्ण होता है, और उसकी अनुपूर्ति भी पूर्ण होती है।”

उपर्युक्त विवेचन का तात्पर्य यह है कि जब किसी घटना का प्रभाव कविता द्वारा प्रदर्शित किया जाता है, तो वह उसे एक लघु आकार में सुंदर शोभा में काय्यबन्ध कर लेता है, यद्यपि खंडकाव्य कहलाता है। उसे कलापूर्ण बनाने के लिए अन्य उपकरणों की आवश्यकता भी पड़ती है। महाकाव्य का एक भवन मानें, तो खंडकाव्य को एक कक्ष बना सकते हैं।

8.2 खंडकाव्य के लक्षण

8.2.1 कथानक

खंडकाव्य का कथानक भी ऐतिहासिक, कल्पित, मिश्र या प्रख्यात हो सकता है। खंडकाव्य की कथा में वर्ण व्रत या प्रबंध विधान तो महाकाव्य के समान ही रहता है पर आयाम के सीमित होने के कारण विषय संक्षिप्त रहता है। इसी कारण इसमें जीवन का विस्तार नहीं आने पाता। इसके लिए कथा संगठन तो आवश्यक है। कथा विनायक के क्रम, आरंभ, अन्त, स्थाना और निश्चित उद्देश्य होना चाहिए। खंडकाव्य की कथा को पूर्णता प्रदान करने के लिए एक-दो अवतार या प्रासंगिक कथाओं की आवश्यकता अवश्य होती है। पर सवा ही इन कथाओं का स्थान गौर होना चाहिए। कथावस्तु को रोचक एवं संभाव्य बनाने के लिए नाटकीय आकस्मिकता, संभाव्य की असंभाव्य उपस्थिति, वैष्णव आदि उपकरणों का सहारा लिया जा सकता है। हां उसमें नाटकीय संगीतों का होना आवश्यक नहीं है। पीढ़ी-पीछे घटना में एक निश्चित व क्रमिक उत्तर-चढ़ाव जरूरी है। उसकी घटने में कथा-मीमांसा की अपेक्षा घटना विशेष पर अधिक बल देने की प्रवृत्ति रहती है। अतः खंडकाव्य में एक ही प्रधान घटना, समस्त अपहरणित तथा कलान्तर, मार्मिक एवं प्रभवित्त चित्रण किया जाता है।”

8.2.2 चरित्र या पात्र

खंडकाव्य में कथा के समान पात्र भी ऐतिहासिक, कल्पित, मिश्रित या प्रख्यात होते हैं। पात्रों में प्रबंध स्थान नायक का है। कोई भी पुरुष इसका नायक बन सकता है। खंडकाव्य का नायक भी महाकाव्य के समान महान कार्यों में संतुलन रहता है तथा अंत में वह भी फल प्राप्ति के
लिए सतत प्रयत्नशील रहता है। खंडकाव्य के पात्र महाकाव्य की भांति उच्च वंश के चाहे न हो, किंतु उनके महत्त्व काय न के लेखा-जोखा अवश्य मिलना चाहिए। नायक का काय धर्मविष्णु व चरित्र दुर्लभताओं से युक्त होने पर भी प्रभाव दालने में सक्षम होना चाहिए। चरित्र-चित्रण में आवश्यक की अपेक्षा यथार्थ की ओर तुरंत रहनी चाहिए।

4.2.3 रस एवं भावव्यज्ञन

रस-व्यंजना का उल्लेख करते हुए सदृश ने लिखा है कि खंडकाव्य में किसी एक रस की व्यंजना होनी चाहिए। यदि इसमें अनेक रस हों तो वे अपूर्ण-से होने चाहिए अर्थात् इनके सभी रूपों का प्रयोग न किया जाए। यदि किसी एक रस का वर्णन हो तो वह पूर्ण होना चाहिए। अर्थात् महाकाव्य में चाहे कितने भी रसों का मुख्य या गोरुण रूप से वर्णन हो, पर वह पूर्ण होना चाहिए, जबकि खंडकाव्य में केवल एक रस का ही सरस सिर्फ अपेक्षित है। खंडकाव्य में रस-परिपक्व का अवकाश नहीं रहता। उसमें एक ही अंगी रस या प्रभावपूर्ण भाव-व्यज्ञन की योजना रहती है। नहीं पर रस-निरपेक्ष न विशाल विशेष भाव की अभिव्यक्ति की जाती है, वहाँ प्रभावाव्यक्ति के लिए अपवाद गृहावक रहती है। इसमें भावों की मामलकता व गहराई आवश्यक होती है। खंडकाव्य में घटनाएं कम और भावुक इतव के भावोच्छवास अधिक अभिव्यक्त होते हैं।

4.2.4 प्राकृतिक वर्णन एवं समग्र जीवन का निर्णय

खंडकाव्य में भी देशाकाल-वातावरण का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है। वातावरण ही पाठक को उस संदेश के लिए तैयार करता है जो कवि अपने काव्य के माध्यम से पाठक को देना चाहता है। खंडकाव्य में प्रभावपौर्वकता की मात्रा महाकाव्य से अधिक होती है। खंडकाव्य की प्रेरणा सभी काव्यों की प्रेरणाओं से इतिहासियों तथा सरस होती है। इस सरसता के लिए प्राकृतिक वर्णन आवश्यक है।’’’ खंडकाव्य में जीवन के एक खंड या घटना का जो चिरण होता है, वह उस व्यक्ति के जीवन की सबसे अधिक प्रभावपौर्वक घटना होती है। अर्थात् इसमें व्यक्ति के जीवन का एक ही प्रमुख घटना का वर्णन होता है, जो जीवन के किसी एक पश की झलक प्रस्तुत करता है।

4.2.5 अभिव्यक्ति प्रक्रिया

महाकाव्य के समान खंडकाव्य में सर्ग विषयक कोई भी बंधन नहीं होता। महाकाव्य के लिए कम से कम आठ सर्गों की आवश्यकता बताई गयी है। खंडकाव्य की कझा लघु होती है। अतः इसके लिए सर्ग ही भी सकते हैं तथा नहीं भी। आज खंडकाव्यों में सर्गों की विविधता है।
वास्तव में सर्म ख्रिङ्कस्थ के लिए कोई अनिवार्य लक्षण नहीं है। सर्म संज्ञाय सीमित रहे यह वांछनीय है। आज किना सर्म का भी ख्रिङ्कस्थ लिखा जाता है। ख्रिङ्कस्थ में छद का कोई विशेष बंधन नहीं है। एक सर्म में या संपूर्ण ख्रिङ्कस्थ में आदोपांत एक छद का प्रयोग किया जा सकता है। पर वह अनिवार्य लक्षण नहीं है। एक छद से कथा प्रवाह में एक विशेष प्रकार का सींगवर्ण आ जाता है।

अन्य श्रीती एवं कड़ि विषयक बातों में ख्रिङ्कस्थ महाकाव्य के समान ही है। ख्रिङ्कस्थ जीवन की किसी एक अवस्था की नाटकीय अभिव्यक्ति है। यह कार्य रोचक एवं गतिशील संबंधों द्वारा संपन्न होता है। भाषामयी भाषा-श्रीती के कारण कवि जीवन के व्यक्ति-विन ने सींगवर्ण धालकर उसे पूर्ण बना देता है। ख्रिङ्कस्थ की रचना गीतिकक्ष का श्रीती के अधिक निकट पड़ती है।"33 अन्लंकार का जो महावत महाकाव्य में है ख्रिङ्कस्थ में भी बहीं होता है। ख्रिङ्कस्थ का प्रारंभ तथा आंत भी महाकाव्य के समान होता है। जिसमें तीनों प्रकार की स्तुति, सजन प्रशंसा, दुर्भन निंदा, गुरुवंशिना तथा प्रयोजन आदि का प्रयोग किया जाता था। ख्रिङ्कस्थ की भाषा भी महाकाव्य की भाषा के गुणों से युक्त, सजन सुलभ लोकभाषा होती थी, जिसमें अग्राय शब्दों तथा भाषाओं का प्रयोग निषिद्ध है। उसमें लोकरंजकत्व का गुण अवश्य होना चाहिए।

8.2.6 उद्देश्य

रूप के अनुसार ख्रिङ्कस्थ में नायक चतुर्वेदी (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) में से किसी एक की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता है। ख्रिङ्कस्थों का उद्देश्य महाकाव्य के समान तो नहीं होता, पर उससे कुछ कम अवस्था का होता है। अर्थात् ख्रिङ्कस्थ में महाकाव्य की भाषा उद्देश्य की महत्त्वता सम्बंध नहीं है। कवि अपने युग की धर्मनी की अवश्य सुनता है, जिसकी प्रतिपुनि ख्रिङ्कस्थ में कभी तो बहुत ही हल्की होकर सुनाई देती है और कभी एकदम सम्पुन्न। जीवन सत्य के किसी महाश्वेत कितु का उद्देश्य ख्रिङ्कस्थ के माध्यम से किया जाता है।"33 महाकाव्य में जहाँ कवि किसी महान उद्देश्य को कहता है वहाँ ख्रिङ्कस्थ में किसी साधारण उद्देश्य का बात कहकर वह संस्कृत हो जाता है। कई बार ख्रिङ्कस्थ के माध्यम से भी कवि झांकना महान संदेश दे देता है कि एक नहीं अनेक महाकाव्य भी उस संदेश को देने में असमर्थ—र्शे वितरी होते हैं।"34

ख्रिङ्कस्थ के उपर्युक्त स्वरूप विषयक के उपरांत विषयक रूप में कहा जा सकता है कि ख्रिङ्कस्थ वह छोटे-बड़े काव्य रूप है जिसमें किसी उदात्त कथानक के द्वारा किसी उदात्त
चरित के एक जीवन खंड, किसी विशेष घटना या किसी प्रसंग का किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्वयंभाविक रूप से गरिमामयी शैली के माध्यम से किसी एक रस एवं भाव की अपूर्व व्यजना करते हुए चित्रण हो। यहाँ युग-जीवन का स्वयंभाविक चित्रण भी अपेक्षित है। इसमें संगी का विशेष बंधन नहीं होता। खंडकाव्य का कथानक किसी विशिष्ट घटना से लेकर जीवन के स्थूल वस्तु-व्यापार तक से संबंध हो सकता है। खंडकाव्य महाकाव्य से आराम तक छोटा होता है पर अपने लघु रूप में भी उसकी अनुभूति की अभिव्यक्ति पूर्ण होती है।

4.3 खंडकाव्य के प्रकार

खंडकाव्य के स्वभाव विवेचन के उपरांत खंडकाव्य के वर्गीकरण के महत्वपूर्ण कार्य परिचित वांछनीय हो जाता है। संस्कृत-काव्यशास्त्र में खंडकाव्य का वर्गीकरण नहीं हुआ है। हिंदी के आचार्यों का भी ध्यान समुचित रूप से वर्गीकरण करते ही ओर नहीं गया है। लेकिन कलियु आधुनिक विद्वानों ने खंडकाव्य के वर्गीकरण को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

खंडकाव्य का वर्गीकरण करने का प्रयास सर्वप्रथम डॉ. भगीरथ मिश्र ने किया है। अपने ‘काव्यशास्त्र’ ग्रंथ में उन्होंने खंडकाव्य के दो भेद किए हैं—‘एक संपात’ अथवा ‘एकार्थ खंडकाव्य’ है, जिसमें एक प्रकार के छंद में ही एक घटना या दृश्य का वर्णन किया जा सकता है। दूसरा भेद ‘अनेकार्थ खंडकाव्य’ का है, जिसमें अनेक प्रकार के छंदों में विविध भावों के साथ जीवन के एक अंश का चित्रण होता है।”39 प्रस्तुत काव्य-रूप के वर्गीकरण के लिए डॉ. मिश्रनी ने जो आधार स्वीकार किया है, वह विशेष महत्वपूर्ण है। छंदों के आधार पर एक छंदात्मक खंडकाव्य तथा बुरु छंदात्मक खंडकाव्य का वर्गीकरण सराहनीय है।

खंडकाव्य वर्गीकरण का दृष्टांक प्रयास डॉ. शंकुलता दुबे ने किया है। उनका मंतव्य है—
“खंडकाव्य भी कवि की आंतरिक प्रेरणा के परिवर्तन के साथ अन्याय-रूपों में अभिव्यक्त होता हुआ, क्रमशः विकसित होता गया। जब कवि की प्रेरणा ने लोक के बीच हिल-मिल कर काव्य रूप में उद्गृहित होने का पथ ढूँढ़ निकाला तब जिन खंडकाव्य का निर्माण कवि ने किया उनमें लोकरण ही इन कवियों का एकमात्र लक्ष्य विचारों पद्ध। किंतु जब कवि की प्रेरणा का घोट लोक की उस सहज धारा से दूर काव्य की शास्त्रीय परंपरा के बीच से मिला, तब ऐसे काव्यात्मक एवं कला-पूर्ण खंडकाव्यों को जन्म मिला, जिनका उपस्थापन न केवल साहित्य मर्म महत्व व्यक्ति ही कर सकता है।”36 डॉ. शंकुलता दुबे ने लोक-वृद्धि तथा शास्त्रीय परंपरा का खंडकाव्य का मूल घोट मानते हुए हिंदी खंडकाव्यों को जो वर्गों में विभाजित किया है— (१)
लोक से उदभूत लोकरंजन के लिए निर्मित खंडकाव्य। (२) देशी या विदेशी काव्य परंपरा से उदभूत साहित्य-मर्मस सहायता के लिए निर्मित खंडकाव्य।

दारुं दुबे के अनुसार कुछ खंडकाव्यों में लोक-वृत्ति की प्रधानता है, तो कुछ में कवि का व्यक्तित्व अधिक प्रधानता लिए होता है। इस आधार पर उन्होंने यह दो भेद करते हुए उनका अलग नामांकन इस प्रकार किया है—(१) लोक-वृत्ति प्रधान खंडकाव्य (२) कवि प्रधान या व्यक्तित्व प्रधान खंडकाव्य।

लोक-वृत्ति प्रधान वर्ग में उन्होंने वो वर्गों के खंडकाव्यों को रखा— (१) बीर भावात्मक और (२) प्रेम प्रधान खंडकाव्य। देशी या विदेशी काव्य परंपरा से उदभूत साहित्य-मर्मस के लिए निर्मित खंडकाव्यों के आपने वो वर्ग किए हैं। एक पुरानी शैली के खंडकाव्य तथा दूसरे नवीन शैली के खंडकाव्य। नवीन शैली के खंडकाव्यों को पुनः दो भागों में विभक्त किया है—विस्तृत वर्णनात्मक तथा संक्षिप्त प्रभावात्मक शैली के खंडकाव्य। संक्षिप्त प्रभावात्मक शैली के खंडकाव्यों को उन्होंने सर्गबद्ध तथा सर्गविहिन दो भागों में विभक्त किया है। इसके भी अबातर विभागों का आपने संकेत दिया है। २७० दारुं दुबे जो दुसरा किया वर्गीकरण का अलोककन करने पर जात होता है कि उन्होंने खंडकाव्य रूप का वर्गीकरण नहीं किया है, लेकिन खंडकाव्य रूपों की अन्तःप्रेमण एवं उदर्श्य की वृत्ति से विभाजन किया है।

दारुं निर्मल जेन ने भी खंडकाव्य के दो भेद किए हैं— एक महाकाव्यात्मक खंडकाव्य और दो लघुप्रभावात्मक खंडकाव्य। दारुं जेन का यह वर्गीकरण भी महज काव्य कलेवर पर आधारित है।

दारुं, एस. तंकमणि अम्मा ने कथावस्तु, छंद, सर्ग आदि मानववंशों को प्रमुख आधार मानते हुए खंडकाव्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया है— (१) कथावस्तु के आधार— इतिहासिक, पौराणिक खंडकाव्य। (२) छंद के आधार पर— एक छंदात्मक, बहुछंदात्मक, गीतात्मक, मुक्तछंदात्मक खंडकाव्य। (३) सर्ग के आधार पर— सर्गयुक्त सर्गरचित खंडकाव्य आदि। २७६ दारुं तंकमणि अम्मा ने खंडकाव्य की विकास परंपरा को ध्यान में रखते हुए एक वर्गीकरण प्रस्तुत किया जो इस प्रकार—

कथावस्तु के आधार पर— (१) कथा प्रधान तथा विचारप्रधान (२) प्रथ्यात्मक एवं कल्पनिक (३) इतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक, एवं नाटकीय (रूप प्रधान), हस्ताक्षर आदि।

219
रस के अनुसार– (१) एक रस समग्र रूप में, अनेक रस अमग्र रूप में। (२) भूगार रस प्रधान, वीर रस प्रधान, कण रस प्रधान आदि।

संरूप के अनुसार– (१) संगमबुद्ध (२) संगमवक्त (३) जिसमें संरूपकारण न हो (४) जिसमें संगमबद्वता एवं वर्णन संकेत दोनों हो।

छद के अनुसार– एक छदात्मक, बहुछदात्मक, गीतात्मक, मुक्त छदात्मक।” ३९

डॉ. नीता सिंह ने खंडकाय के विकास क्रम को देखते हुए तीन भागों में विभक्त किया है– (१) प्रारंभिक खंडकाय (२) मध्यकालीन खंडकाय (३) आधुनिक खंडकाय– भारतेंदु युगीन खंडकाय, धिवसी युगीन खंडकाय, छायावाद युगीन खंडकाय, प्रगतिवादी युगीन खंडकाय, प्रयोगवादी युगीन खंडकाय तथा स्वातंत्र्योत्तर खंडकाय।” ४०

उपर्युक्त खंडकाय का वर्गीकरण देखने के उपरांत हम हिंदी खंडकाय की विकास परंपरा को स्पष्ट रूप से इस प्रकार वर्गीकृत कर सकते हैं– (१) आदिवासी खंडकाय (२) भक्तिकालीन खंडकाय (३) रितिकालीन खंडकाय (४) आधुनिक खंडकाय– स्वातंत्र्यपूर्ण कालीन खंडकाय तथा स्वातंत्र्योत्तर खंडकाय

४.४ हिंदी खंडकाय का विकास क्रम

हिंदी साहित्य में खंडकाय की परंपरा विभिन्न रूप से विकसित हुई है जिन्हें काल क्रमानुसार इस तरह विभेदित किया जाएगा–

४.४.१ आदिवासी खंडकाय

हिंदी साहित्य के आदिवासी में राजनीतिक, सामाजिक अस्थिरता के कारण काव्य के इस रूप की परम्परा अभिवृद्धि नहीं हो सकी। आदिवासी साहित्य को जैन कवियों की देन महत्वपूर्ण है। जैन कवियों ने जितने एकार्थ काव्य बाटों, उतने अन्य काव्य रूप नहीं। उनके चरित्र यथा न तो महाकाव्य है न खंडकाय। डॉ. हरिशंकर शर्मा ने समग्र जैन काव्य संंहों को एकार्थ काव्य माना है।" ३३ आदिवासी में रचित खंडकायों में– ‘संवेद रासक’ (अब्दुल रहमान); ‘भरतेश्वर बाबुली रास’ (शालिपत्र); ‘नैनिनय चउपई’ (विनयचंद्र सूरि); ‘बीसलबेद रास’ (नरपति नान्द); ‘निनौद सूरि’ (मेहरनंदन); ‘हरिचंद्र पुराण’ (जायोपन्यास); ‘खुपान रासो’ (बलपति विजय); ‘परमाण रासो’ (जगनिक); ‘ढोला मारवणी चउपई’ (कवि हरिराज); ‘माधवानल कामवंदला’ (कुशल लाभ) आदि उल्लेखनीय हैं।
### 4.4.2 भक्तिकालीन खंडकाव्य

द्र. शकुंतला हुवे ने मध्यकालीन खंडकाव्यों को ‘प्रभुप्रधान खंडकाव्य’ और ‘भक्तिप्रधान खंडकाव्य’ नाम देकर दो भागों में विभक्त किया है। सूती प्रभुप्रधान खंडकाव्य में– ‘मृगावती’ (कुलुबन); ‘मथुपाली’ (मण्डन); ‘चिन्तावली’ (उसमान); ‘हंस-जवाहर’ (कासिमशाह)। ‘इंद्रावती’ (पूर्व मुहम्मद); ‘युसुफ जुलेखा’ (अख किसान) आदि की गणना की जा सकती है।

भक्तिकालीन खंडकाव्यों में विषय सामग्री के लोकोत्तर होते हुए भी काव्य रूप लीकिक भित्ति पर ही अंकित हुआ है। इस काल में ‘रक्षिमणी मंगल’ (विष्णुवास); ‘प्रभुप्रधान लीला’ (रे काल); ‘दान लीला’ (कुंभकर); ‘रक्षिमणी मंगल’, ‘रामरपांचाध्यायी’, ‘भोवरणीत’ (नवद्वार); ‘दान लीला’, ‘धीरचरित्र’ (परमाण्ड दास); ‘सुदामा चरित्र’ (हल्लदर्वास); ‘सुदामा चरित्र’, ‘धीर चरित्र’ (नरोतम दास); ‘पार्वती मंगल’, ‘जनाकी मंगल’, ‘रामलाला नहुँ’ (तुलसीदास); ‘बेलिज चित्र रक्षिमणी री’ (पृथ्विराज); ‘ब्रज विलास’ (ब्रजवासी दास) आदि उल्लेखनीय हैं। विषय की दृष्टि से उपयुक्त सभी खंडकाव्यों में भक्ति भावना का प्राथायन है, किंतु रूप की दृष्टि से प्रचेत क्रम की रचना अपनी भिन्न विशेषताएं लिए हुए है।

### 4.4.3 रीतिकालीन खंडकाव्य

रीतिकाल में ‘सुजान चरित्र’ (सूदन); ‘छत्र प्रकाश’ (लाल); ‘हमीर हठ’ (चंद्रशेखर); ‘माधवानल काम कंदला’ (अलम) आदि अनेक ऊंचे दर्जे के खंडकाव्य लिखे गये। रीतिकालीन कुछ कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की प्रसना में अधिकार खंडकाव्य लिखे हैं जिनमें ‘हमीर रासो’ (जोगराज) ‘वीर सिंह देव चरित्र’ (केशवर्दास); ‘हिम्मत बहादुर विक्रमादित्य’ (परमाकार); ‘रक्षिमणी मंगल’ (ताकुरदास); ‘अरुणदत्त रामचरित’ (रामनीलाल); ‘सुदामा चरित्र’ (प्राणनाथ); ‘उषा-अनिरुद्ध विवाह’ (रामचरित); ‘दानलीला’ (भानवास); ‘प्रह्लाद चरित्र’ (देवसिंह); ‘हमीर हठ’ (स्वाल); ‘उषा हरण’ (आदिलदाल नागर); ‘राज मंचाध्यायी’ (कृष्णदेव); ‘सीता-स्वंयंत्र’ (वनलसिंह); ‘जानकी विजय’ (बलदेवास); ‘हनुमान नाटक’ (उदय); ‘धीरलीला’ (सुंदर ब्रह्मण); ‘हमीर हठ’ (चंद्रशेखर वाजपेयी); ‘उषा हरण’ (स्रीमान); ‘उषा चरित्र’ (पहार कवित); ‘सुदामा चरित्र’ (वंशमण) आदि उल्लेखनीय हैं।
4.4.1 आधुनिक खंडकाव्य

4.4.1.1 स्वातंत्र्यपूर्वकालीन खंडकाव्य

आधुनिक काल में खंडकाव्यों का विविधपुष्टि विकास हुआ है। नवयुग के प्रारंभ में पंडित श्रीधर पाठक ने ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली में सुंदर खंडकाव्य लिखे हैं। 'एकांतवासी योगी', 'उज्जवल ग्राम', 'श्राह रघुकিয' उनके द्वारा अनुविद खंडकाव्य हैं। जगन्नाथदास रत्नाकर ने 'गंगाबाबू', 'उद्योग-शतक', 'हरिबलदेश' आदि उत्कृष्ट खंडकाव्य लिखे हैं। मैथिलीशरण गुप्त के 'रंग में गंगा', 'जयप्रभु विश्व', 'विकट भाष', 'सिद्धराज', 'संगीत रूप फला भाव', 'शुकुलाल', 'पंचवती', 'अनन्य 'शक्ति', 'विसुध्दिन', 'गुरुकृत', 'वशालोरा', 'हुसून' आदि सफल खंडकाव्य हैं। स्वतंत्रतापूर्व काल तक लिखे गए अन्य खंडकाव्यों की भी तात्त्विक प्रस्तुति है। 'कुमार संभव सार', (भानबीर प्रसाद छित्रवी); 'सती सावित्री', (गरिमार शरमा); 'मौर्य विनय', (सियार राम शर्मा); 'वीर पंचांत', (सकन्न दीन); 'भागवत गाथा', (लोचनप्रसाद पाद्य); 'प्राणबीर प्रताप', (गोकुल चक्क); 'पितलन', (पतिक); 'रामचरित श्रीदेवी', (देववृत्त); 'राम राम रामराम', (रामचरित उपाध्याय); 'रामचरित चंद्रकिरी', (रामचरित उपाध्याय); 'रामचरित विचारक', (रामचरित उपाध्याय); 'रामचरित विचारक', (रामचरित उपाध्याय); 'अनन्य', (सियार शर्मा); 'वुज्ज चंद्रकिरी', 'रामचरित शरण गुप्त); 'नानाशिला', (उदयशंकर भट्ट); 'आतोल्सर', (सियार राम शर्मा); 'प्रताप चंद्रकिर', (केसरी सिंह); 'नूरजहाँ', (गुरु भवत्सिंह); 'सिद्धार्थ', (अनुप शर्मा); 'गुरुमोतक', (तुलसीदास शर्मा); 'तुलसीदास', (निराला); 'मानसी', (उदयशंकर भट्ट); 'स्वामी वामस', (हरिबल); 'हरिद्वारी', (रामनाथरण पाद्य); 'कृष्णचरित मानस', (प्रधान); 'आयांवतं', (मोहनलाल महतो); 'जीहर', (रामकुमार वर्मा); 'जीहर', (सुधीद्र); 'साकेत संत', (बलदेव प्रसाद मिश्र); 'विक्रमादित्य', (गुरुमोतक सिंह) आदि उल्लेखनीय हैं।

4.4.1.2 स्वातंत्र्यपुरात खंडकाव्य

सन १९४७ ई. से लेकर बीसवीं शती के अंतिम दशक तक खंडकाव्य की परंपरा अनंत एवं अखंड रूप में प्रवाहित विकास होता है। इस दौर में रचित खंडकाव्यों की सूची इस प्रकार है- 'मेघवी', (राजेश राघव); 'दिनरंजन' (हरदयाल सिंह); 'कृष्ण' (केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'); 'विजयपथ' (उदयशंकर भट्ट); 'हिंदीवाला' (मैथिलीशरण गुप्त); 'राधाश्रीकृष्ण' (राजेश्वर प्रसाद); 'वर्षामन' (अनुप शर्मा); 'शर्माँ' (अनुप शर्मा); 'वेवार्चन' (करील); 'रामलीला' (विनकर); 'गाँधी गौरव' (गोकुल चंद्र शर्मा); 'ताजालोक' (गोपाल शरण सिंह); 'गांधी मानस' (नारदलाल स्नेही); 'सावित्री' (गोरीशंकर मिश्र); 'झांसी की रानी' (विश्वनारायण
प्रसाव; ‘शत्यवच’ (उत्तरारायण मिश्र); ‘विवेक’ (रामावतार रूपण); ‘हनुमान्यातिर’ (रणवीर रूपण); ‘शिव’ (संग्रह रूपण); ‘महाराज’ (नरेशचंद्र मिश्र); ‘प्रताप’ (रणवीर सिंह); ‘फोनलाप्रेम’ (उमाशंकर वर्मा); ‘दामयती’ (ताराचंद्र हारित); ‘कच’ देवथानी (रामचंद्र); ‘मोर’ (प्रभास शिंगेपुल); ‘तात्या ऐंते’ (लक्ष्मीनारायण कुशावल); ‘उत्तमराज’ (केदारनाथ मिश्र ‘प्रभात’); ‘प्रकटवर’ (गिरिराजवर शुक्ल); ‘जनानायक’ (रघुवीर रूपण); ‘अंतर्वन’ (उदयशंकर भट्ट); ‘चंद्रगुप्त मोयर’ (राम खेभान); ‘सेनापति कर्ण’ (लक्ष्मीनारायण मिश्र); ‘दानवीर कर्ण’ (गृह प्रेम सेमवाल); ‘बिदुलोपख्यान’ (भगवत शरण चतुरबेन); ‘शामिल शंखनादान’ (लक्ष्मीचंद्र मिश्र); ‘राणा प्रताप’ (हरीश); ‘किरण’ (भरतेर भरती); ‘शादी’ (रामगोपाल शरण); ‘बागला’ (प्रभास भरती); ‘देवथ’ (बापुदेव प्रसाद); ‘अनंग’ (चंद्रकार); ‘अनंग’ (उदयशंकर भट्ट); ‘अनंत’ (केदारनाथ मिश्र); ‘स्वरूप’ (केदारनाथ मिश्र); ‘गुरु विलिण’ (बिनाद चंद्र पाट्य); ‘गुरु विलिण’ (रामाचंद्र शुक्ल ‘रसाल’); ‘संगीत की एक रत’, ‘महा प्रसाद’, (नरेश श्रेष्ठ); ‘सानंदली’ (हरीप्रसाद); ‘अमिताभ’ (भावचंद्र शरण); ‘संजीव’ (रमकौंत शङ्कर); ‘आमनी’ (सुरज नारायण); ‘कादिवास’ (श्री तिलक); ‘उपमा’ (गुलाब खंडलवाल); ‘बिनय’ (कुंवर बाबुराव जिंदगी); ‘मानवेंद्र’ (रघुवीर रूपण); ‘बिरहिणी’ (मुंशीराम शरण); ‘श्री गुरुगोविंद शिंग’ (स्याम नारायण प्रसाद); ‘संत महात्मा’ (अमृतलाल मदान); ‘शिवकृष्ण’ (पद्मसिंह शरण); ‘एक टंड बिषापाय’ (दुहुंद मुम्बई); ‘समरजय’ (नितिन शुकर); ‘जोशिया’ (विनायक शरण गुप्त); ‘लक्ष्यमाय’ (दूरबुद्ध; ‘अंतराल’ (बाबूलाल गोस्वामी); ‘राघव’ (जनकीलल काशी); ‘आयता के दीय’ (बाबुराव शुक्ल); ‘संघर्ष’ (जगदीश गुप्त); ‘भस्माकुर’, ‘भूमिज्ञ’, (नागर्जुन); ‘सुयणा’ (नरेश शरण); ‘भवान राम’ (भनवोधन लाल); ‘जाजी जीवन’ (राजराम शुकल); ‘भारती का खड़क’ (जगदीश कुमार); ‘निजामसिता’ (रमानंद); ‘बनवासी’ (महावीर जिंदगी); ‘गुरु पुरुष चाँदक’ (लक्ष्मीकांत विद्याधर); ‘तमसा के पार’ (बिमुखलाल अवधूरत); ‘तुलसीदास’ (कृष्ण कुमार कौशिक); ‘लला और अमिताभ’ (दूरबुद्ध); ‘भग’ (उमाकौंत मलबी); ‘भरत’ (बाल्मीक विकट); ‘मांडबी’ (स्वरूप विग्रह); ‘एक पुरुष और’ (बिनय); ‘सुरपुरुष’ (जगदीश चतुरबेन); ‘आंजन’ (दया कृष्ण विनय); ‘एक हिस्से में’ (रघुवीर गुरु); ‘सत्यकार’ (सुमित्रानंद पंत); ‘प्रणंपर’ (विनय); ‘अभिमलेख’ (भाभु भूषण अग्रवाल); ‘अभिमान महाराज’ (मोहन अवस्थी); ‘विषाव राज’
रत्नचंद्र शर्मा); 'वीरगति' (लक्ष्मीनारायण मिश्र); 'कालजयी' (वेंकट शर्मा 'अंद्र'); 'प्रवाद पर्व' (नरेश मेहता); 'विवेक केतु' (बलदीर सिंह); 'शबरी' (डॉ. सीमिन); 'सत्यरथि' (नीरव); 'कालजयी' (भवानीप्रसाद मिश्र); 'पवन तनां', 'सीता समाधि' (राजेन्द्रराव अग्रवाल); 'छात्रवृत्ति शिवाजी' (रामकुमार सिंह); 'पुनर्वास का वंद' (विनय); 'प्रवणों के सुरीवंश' (अनादि मिश्र); 'परिवार के पांच श्रण' (किशोर कवरा); 'वनवासियों नीता' (जागतिक सबसेना); 'मंगा' (राजेन्द्र शर्मा); 'वैष्णव' (मृणुमय); 'सत्यवत्स' (श्रीकृष्ण राय 'दयेश'); 'पृथिवीपुत्र' (श्री विलास डबराल); 'किसने प्रशंस करें' (ममता कालिया) आदि।

4.4 मैथिलीशरण गुप्त जी के खंडकाव्यों का वर्तुळत अध्ययन

आधुनिक हिंदी साहित्य में खंडकाव्यों की नित्यती अभिवृद्धि गुप्तजी द्वारा हुई है, उतनी किसी अन्य कवि के द्वारा नहीं। हिंदी के किसी काल में किसी एक कवि द्वारा इन्हें खंडकाव्य नहीं रचे गए, जिनमें गुप्तजी की लेखनी ने प्रसूत किया। गुप्तजी की सज्जना की अवधि अर्थ शताब्दी से भी अधिक समय तक व्याप्त है। सन १९६० ई. से सन १९६४ ई. तक के कालरंग के अंतर्गत उन्होंने देश दर्जन से अधिक खंडकाव्यों की रचना की है जिनमें 'रंग में पंज', 'जयद्वीप', 'शकुंतला', 'किलान', 'पंचवटी', 'शक्ति', 'सैंसंघी', 'वन-वैभव', 'बंक-संहार', 'विकट भर', 'यशोधर', 'सिरराज', 'नुष्प', 'कुणालगित', 'काव्या और कव्यला', 'अन्तित', 'हिंदिबा', 'पुंढ़', 'विष्णुप्रयास', 'रत्नावली' आदि उल्लेखनीय हैं। कवि का अप्रकाशित खंडकाव्य 'नल-दमंती' अनुपलब्ध रचना है। कवि ने उसे आक्षण काव्य की संज्ञा दी है। वह निर्माण-कालिक रचना है, जो हस्तलिखित रूप में कहीं खो गई है।' ३२ इसी कारण उसका अनुशीलन नहीं हो सकता। गुप्तजी के 'विकट भर', 'झपर', 'कुणालगित', 'अर्जन और सन्धर्म' आदि प्रथम-काव्यों को भी खंडकाव्यों की कोटि में रखा है लेकिन उन्हें निबंध काव्य की क्ष्रीणी में रखना ही उचित है। फलत: गुप्तजी के प्रकाशित बीस खंडकाव्य ही इस अध्ययन की विषय सीमा में गृहीत होंगे।

उपर्युक्त खंडकाव्यों को विषय की वृद्धि से तीन भागों में रख सकते हैं-

- पौराणिक खंडकाव्य (पुराण, रामायण और महाभारताभिषेक खंडकाव्य)

'जयद्वीप', 'शकुंतला', 'पंचवटी', 'शक्ति', 'सैंसंघी', 'वन-वैभव', 'बंक-संहार', 
'नुष्प', 'हिंदिबा', 'उम्मेला', आदि को इस कोटि में रखा जा सकता है।
• इतिहासार्थित खंडकाव्य

इस वर्ग में ‘रंग में भंग’, ‘यशोधरा’, ‘कावा और कर्वला’, ‘सिझराज’, ‘विष्णुप्रिया’, ‘रतनावली’ आदि काव्यों को रखा जा सकता है।

• सामाजिक खंडकाव्य (समसामयिक तथा काल्पनिक घरातल पर आधारित)

सामाजिक विषय तथा पाठों के आधार पर लिखित काव्य सामाजिक खंडकाव्य की कोटि में आता है। गुप्तजी की किसान, अजित आदि कृतियों को सामाजिक काव्य की कोटि में रख सकते हैं।

इस प्रकार इन खंडकाव्यों में अधिकांश पौराणिक, कुछ ऐतिहासिक और कुछ काल्पनिक तथा सामाजिक हैं। पौराणिक और ऐतिहासिक कथाकथनों के आधार पर गुप्तजी ने अपनी खंडकाव्य कला की कुशलता और मौलिकता की जो छाप पाठकों के ऊपर छोड़ी है वह अपना एक विशेष महत्त्व रखती है। सामाजिक प्रथाओं पर कल्पना या भावनात्मक आधार पर प्रकाश दानना गुप्तजी की लेखनी से अद्वैत नहीं रहा। फलतः यहाँ प्रकाशन काल के अनुसार गुप्तजी के खंडकाव्यों का अनुशीलन-परीक्षण करना सम्भव होगा।

8.5.1 रंग में भंग (सन १९०९ ई.)

8.5.1.1 विषय-वस्तु

इस खंडकाव्य की रचनाकाल की दृष्टि से गुप्तजी की सर्वप्रथम रचना होने का सीमान्य प्राप्त है। यह रचना प्रथम ‘सरस्वती’ में प्रकाशित हुई थी। तदनुसरण सन १९०९ ई. में वह परिवर्धित होकर पुस्तक रूप में प्रकाशित हुई। वह कुल मिलाकर १२३ पढ़ों की रचना है।

इसके प्रथम संस्करण में एक सी बीस पढ़ रहे लेकिन दूसरे संस्करण में तीन पढ़ और बढ़ाए गए हैं। प्रस्तुत काव्य के ‘निवेदन’ में गुप्तजी का मंतव्य है— “रंग में भंग’ के इस दृस्तर संस्करण में एक-आघ जगह कुछ फेर-फार किया गया है और प्रसंगानुकूल तीन पढ़ और बढ़ाए गए हैं।”

यह घटना प्राप्त काव्य ऐतिहासिक कलेवर में प्रस्तुत किया गया है। अर्थात् यह ऐतिहासिक खंडकाव्य है। स्वीडिनाच की नवलंगड़’ नामक कविता पर एक चित्र बनाया गया था जो ‘सरस्वती’ में प्रकाशनार्थ भेजा गया था। जोधपुर के मौलिक देवी प्रसाद ने इस चित्र के संबंध में संस्कृत भाषायक किया था। आचार्य णिकेश ने उसकी सुचना गुप्तजी को दी। कवि ने कर्नल टाइड के राजस्थान के इतिहास से अपनी पुस्तक के लिए ऐतिहासिक सामग्री ग्रहण की। प्रथम एक लंबी कविता के रूप में और बाद में लघु खंडकाव्य के रूप में उन्होंने हाड़ा राजपूतों का
वर्णन किया है। इसके प्रथम संस्करण की प्रभुमिका में आचार्य विवेकी जी ने लिखा है- “इस देश के विशेष करके राजपूताने के इतिहास में ऐसी अनंत बीरोंचित गाड़ियें-देशमुख्य-दशक और
गंगा-गोरखास्यद घटनाएं हुई है जो विरोधपरियों हैं। ... जिस घटना के आधार पर यह कविता
लिखी गयी है वह एक ऐतिहासिक घटना है, कोई कवि-कल्पना नहीं वह निम्नी भी कारणिक
है उतनी ही उपदेशपूर्ण भी है। इसी से उसके महत्व की महिमा बहुत अधिक है।” यह
वीरभाव से परिपूर्ण आक्राम काव्य है। मात्रमूर्ध के प्रथम के हेतु आत्मबलिवान इसका प्रतिपाद
है।

‘रंग में बृंग’ खंडकाव्य में राजपूतों का अद्वृत बीरत्व प्रदर्शित हुआ है। इसमें बृंगी एवं
चितरूड़ के नरेशों के पारस्परिक कलह की घटनाओं को कविताबद्ध किया गया है। राजपूत
इतिहास की एक रोचक घटना को आधार बनाकर लिखी गयी इस घटना का महत्व इसलिए
और अधिक है कि यह उस समय लिखी गयी जिस समय खड़ीबोली का कोई स्थिर रूप नहीं
था। गुप्तें की इस घटना में बृंगी और चितरूड़ के संघर्ष की कहानी है जिसके प्रवर्तक कवि ने
राजपूतों के गुण दोषों पर प्रकाश डाला है। एक और उनकी बीरता, मान पर मर मिटने, सतीयत्व
और देशभक्ति का गुणागम किया है और दूसरी और उनकी संकीर्णता, बृंगी शान और
चाटुकारिता की निंदा की है।

इसकी कथावस्तु मुख्यतः दो घटनाओं से संबंध रखती है। प्रथम घटना का विषय है
चितरूड़ के महाराणा का विवाहप्रवत्त अपने श्वसुर से विवाह और दूसरी घटना का विषय है
नकली रूप की रचना करने हुए हाय्याकुंभ की मृत्यु। दोनों घटनाएँ परस्पर संबंध अवश्य हैं, यदि
उन्हें अविकार वस्तु-बंध में नहीं बंधा गया है। कथाक का अनुवंच बीच में ही शिखित पड़
गया है। दोनों घटनाएँ पृथक-पृथक दिखाई देती हैं। प्रथम घटना का संबंध विवाह और विवाह
से है तथा दूसरी घटना का संबंध नकली किले से। प्रथम घटना कार्य है और दूसरी उसका
परिणाम है।

सन १३३६ ई. में बृंगी-नरेश हामाजी का स्वर्गवास होने पर वरसिंह गुढ़ी पर बैठा।
उनकी पुत्री का विवाह चितरूड़ के राजकुमार राणा खेतल से तय हुआ। विवाह की तथार्थियों होने
लगी। इसी समय चितरूड़ के भूमराह से एक सुंदर मूर्ति निकाली जिसका ध्वन्न इस प्रकार है-

“एक कर नीचा नवायं, एक ऊपर को किये,
एक कर सम्मुख बढ़ाये, एक गीवा पर दिये।
चौमुड़ी वह मूर्ति मानो कह रही थी यों अभी–

226
हो खड़े, ऊँचे चढ़ो, आगे बढ़ो, देखो सभी।”

इसकी व्याख्या करते हुए राजकवि वारंजी ने राणा की प्रशंसा में कहा कि राणा जैसा वानवीर विलोकन में नहीं है। उस समय वर्षभाग में बूढ़ी के कथ्यायंक के लोग भी उपस्थित थे। उन्होंने बूढ़ी लौटने पर सारी घटना बूढ़ी नरेश को सुनायी।

बारात को सजाया गया और यथासमय वह बूढ़ी आई। विवाह संसार संपन्न हुआ।

विवाह के समय वरसिंह के भाई लालसिंह ने राजकवि की काव्यशक्ति की प्रशंसा की और उनकी चाटुकारिता की निदान की, क्योंकि मिथ्या प्रशंसा के कारण किसी भी राजा का अकल्पन होता है। ‘स्वर्ग में, पाताल में, नूप आप-सा दानी नहीं।’ उक्ति अयथार्थ है। यह आक्षेप राजकवि को चुभ गया और उसने अपना शीशा काट डाला। फिर क्या था, बेढहोन पत्तों के बीच घमासान युद्ध होने लगा। युद्ध में राणा खेतन ने वीरगति पाई। वरसिंह की बेटी पति को मरते देख सती होने की विच हर बेढी और लाख समझाने-बुझाने पर भी सती हो गयी; ‘रंग में भंग’ हो गया। इस प्रकार शाही के रंग में भंग हो जाने के कारण काव्य के पूर्वार्ध में हुई घटना के नाम पर ही काव्य का नामकरण कर दिया गया।

इस घटना के उपरांत काव्य का उत्तरार्ध प्रारंभ होता है। राणा खेतन के बाद चिलोड़ के राज्य-सिंहासन पर राणा लाखा बैठे। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वह तब तक अन्न-जल ग्रहण नहीं करेंगे जब तक बूढ़ी पर विजय प्राप्त नहीं कर लेंगे। यह प्रतिज्ञा पूरा करना असंभव था, अतः मंगियों ने राणा को परामर्श दिया कि वह बूढ़ी का नकली किला बनाकर उसे ध्वस्त करें, अन्न ग्रहण करें और बाद में असली किले पर आक्रमण करें। राणा सहमत हो गए। नकली किला बनाया गया और राणा उसको ध्वस्त करने के लिए आगे बढ़े। उन दिनों चिलोड़ में हाड़ा लोगों की एक छोटी सी सेना थी, जिसका सेनापति था कुडावर्सी। जिस समय राणा नकली किले को तोड़ने जा रहे थे, संयोगवश कुडावर्सी के खिलाफ लौट रहा था। जब उसने राणा को बूढ़ी का कृत्रिम किला तोड़ने के लिए तैयार देखा तो उसे वह मान्यमूर्धि का अपमान लगा और वह उस किले की पक्षा करने लगा, उसने राणा को रोका। युद्ध हुआ और उसमें कुड़ा युद्ध करते-करते अपने साथियों के साथ वीरगति को प्राप्त हुआ। कवि ने उसके मान्य-भूमि प्रेम को इस तरह प्रकट किया-

“पुष्ट हो निज़के अलौकिक अन्न-नीर-समीर से,
में समय हुआ सभी विध रह विक्रोग शरीर से।
यद्यपि कृत्रिम रूप में वह मान्यमूर्धि समझ है,

227
किते लेना योग्य क्या उसका न मुझको पश्चि है?"36

पात्र या चरित्र

मध्ययुगीन कार्य धर्म के आदर का चित्रण करने वाले खंडकाव्य 'रंग में बंग' के सभी पात्र आन-बान पर मिलते जाते हैं। वस्त्र: यह काव्य एक वर्णनात्मक आक्रामक है और इसमें कवि ने चरित्र-चित्रण का कोई विशेष प्रयास नहीं किया। गुप्तजी नव-वचु, राज-कविय, राणा खेतल, राणा लाखा, बृद्धि नरेश, वर्षसिंह, लाल सिंह, हाड़ा कुंभ आदि पत्रों की अवतारणा की हैं। बृद्धि नरेश हार्माजी के जेःत पुत्र वर्षसिंह थे। वे प्रजापालन करते थे। न्यायसील, दानी और विवेक संपन्न शासक थे। छोटे भाई लालसिंह और उनकी पुत्री के प्रति उनका प्रभाव स्नेह था। उन्होंने लालसिंह की पुत्री का विवाह सिसोविया वंश के राजा खेतल से कराने का प्रयत्न किया। दोनों पत्नियों के कलह होने पर उन्होंने दोनों पत्नियों को समझाने और युद्ध को रोकने का प्रयत्न कर अपने विवेक-पौर्ण तथा सहिष्णु स्वभाव का परिचय दिया। युद्ध में बचे प्रतिभाविकों को अभियान लेना उनकी शरणागत वस्त्र-लाभ एवं शैली-प्रसिद्ध उद्यर्थ का परिचयक है। इस प्रकार वर्षसिंह के चरित्र में शैली-प्रसिद्ध गुण विखणाम है।

खंडकाव्य के दूसरे पत्र वर्षसिंह के छोटे भाई लालसिंह उद्धर और उस स्वभाव के थे। वह महाबली अवश्य थे, पर उनमें विवेक, धैर्य, सहिष्णुता और उद्याप्ता आदि सदृश्यों की अपेक्षा रन्धनवालाक, वृत्त, आह्मदाबाद, से आवेश आदि दुर्लभ एवं अधिक थी। उन्होंने के कारण बृद्धि और चितौड़ दोनों राजवंशों को महान क्षति उठानी पहुँच थी।39 लालसिंह मध्ययुग के उन श्रावियों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिन्होंने अपनी बृद्धि शान, अकड़ और दंभ के कारण अपना, अपने अंश, जाति तथा देश का अहिंस किया।

अन्य प्रमुख पत्रों में राणा लाखा और हाड़ा कुंभ उत्तरेश्वरी हैं। चितौड़ के राणा लाखा राणा खेतल की मृत्यु के उपरान्त राजसिंहसन पर आसीन हुए थे। उनमें शासिताचित्र आवेश और दंभ तो था, पर वह विवेक और शरीर नहीं जिसके लिए उन राजकुमार विख्रवित हैं। अतः बृद्धि में हुई भाई की मृत्यु का बदला लेने के लिए वह बिना सचाई-समझौते प्रतिज्जा करता है। इस प्रतिज्जा को पूरा करना असंभव था। राणा लाखा नकली किला तोड़ने का प्रस्ताव बीमार कर लेता है। उसका यह कार्य शासिताचित्र प्रण पालन के बिरुध था। कुल मिलकर राणा लाखा दुर्लभ, आवेश के श्रावियों में गलत निर्णय लेनेवाला और अपनी गलती ज्ञात भोगने पर लज्जा लगाने, गलानि अरुचि करने वाला सामान्य मनुष्य था।
हादा कुंभ शत्रूघि धर्म निभानेवाला आदर्श चरित्र है। वह चित्रवंड के राणा के यहाँ सेवा-कार्य करता था। अपने स्वामी के प्रति निष्ठा रखने के साथ उसे अपनी मातृभूमि से अन्य प्रेम था। अतः आचार्य-प्रेमी हादा कुंभ जब मृगया से नींदकर नगर के बाहर बूढ़ी के किले का प्रतिरूप देखता है तो आश्चर्यचिन्ता होता है। उसका स्वाभिमान और वेश प्रेम जाग उठता है और वह मातृभूमि का आयाम न होने देने की प्रतिज्ञा करता है। शत्रूघि वीरों के समान उसे मृत्यु का भय नहीं। अंत में शत्रुओं के साथ लड़ते-लड़ते वीरगति पाता है। स्वाभिमान, शोभा और देशभक्ति उसके चरित्र के अन्य गुण हैं। कुल मिलाकर हादा कुंभ मध्ययुगीन शत्रूघि-धर्म की प्रतिमूर्ति है।

निष्कर्ष यह है कि ‘रंग में भंग’ के कथा प्रवाह में पात्रों का चरित्रांकन परिपुष्ट नहीं हुआ। डॉ. कमललाल पाटक के अनुसार- “मध्ययुगीन शत्रूघि-धर्म के बीरत्ववाद और सती-धर्म के पालन का गीतवाण गान ही कवि का अभीष्ट है। उन्होंने सतीव ज्ञान और प्रतिज्ञा-पालन बचन का मूर्ति शत्रुघि की आन-दान आदि मध्ययुगीन आदर्शों का नीतिवादी वर्णन किया है”।

रस-भाव निरूपण

इसमें गुप्ती की नवयुग की पुनरुत्थानवादी प्रवृत्तियाँ प्रकट हुई हैं। उन्होंने नारी की उच्चता, मातृभूमि का प्रेम तथा जीवन के नैतिक मानों को प्रधानता दी है। यह एक आदर्शवादी रचना है, जिसमें सदृश्यों को उल्लक्षित किया गया है और पवित्र आचरण को प्रधानता दी है।

इसमें श्रृंगार रस का परिपाक न हो सका, पर तीन बलिवानों की योजना दुरारा करूण रस अवश्य व्यंजित हुआ है। यह बीर भाव से परिपूर्ण आक्रमण काव्य है। तेजस्विन इसमें बीर रस का आपूर्ण परिपाक हुआ है, क्योंकि कवि की वृत्ति इसमें रमी नहीं है। मातृभूमि के प्रेम के हेतु आत्मबलिवान इसका प्रतिपाद है। आन की रशा के लिए उर मिठनवाले वीरों का चित्रण इसमें है। कवि ने हादा कुंभ के मातृभूमि प्रेम को इस तरह व्यंजित किया है-।

"स्वर्ग से भी भ्रष्ट जननी जनमभूमि कहीं गई,
सेवनीय है सभी की वह महा महिमा मयी।
फिर अनावर क्या उसी का में खड़ा देखा करूं?
भीर हूं क्या में आई है जो मृत्यु से मन में डरे??"।

कुल मिलाकर ‘रंग में भंग’ एक वर्णनात्मक खंडकाव्य है, जिसे भवात्मक और आदर्श व्यंजन कायम नहीं। इसे गुप्ती की प्रथम प्रबंध-सृष्टि होने का गीतवाण प्राप्त है।

229
4.5.2 जयद्रथ-वध (सन् १९१० ई.)

रचनाकाल की दृष्टि से यह कविवर गृष्णि का द्वितीय खंडकाव्य है। इसका प्रणयन 'रंग में भंग' रचना के एक वर्ष पश्चात सन् १९१० में हुआ था। गृष्णि ने यह कृति अपने काव्य गुरु पंडित महादेव प्रसाद धर्मेश्वर को समर्पित की है। कथा का आधार महार्षि व्यास प्रणत महाभारत है। कवि ने महाभारत के द्रोण-पर्व में वरिष्ठ अभिमन्यु वध तथा जयद्रथ-वध के आख्यान के आधार पर प्रस्तुत खंडकाव्य की रचना की है।

4.5.2.१ कथावस्तु

'जयद्रथ-वध' की कथावस्तु सात सर्गों में विभक्त है। प्रथम सर्ग में अभिमन्यु के वध की घटना का वर्णन किया गया है। इस सर्ग में युधिष्ठिर के आदेश से पंड्रह वर्षों अभिमन्यु, अपने पिता अर्जुन की अनुमति में पत्नी उत्तरा की अनुमति से, द्रोणाचार्य द्वारा आयोजित हुए चक्रवृक्ष में भेदन के लिए युद्ध-रथ का भाग रहता है। द्रोणाचार्य की बहन हु:शान्ता के पति जयद्रथ व्यासा गुरु की रक्षा किए जाने के कारण युधिष्ठिर, भीम आदि पांडव चक्रवृक्ष के अंदर नहीं जा पाते। अभिमन्यु वीरता से शत्रुओं का सामना करता है। उसके युद्ध की शैल ने कौरव-सेना में खलबली मच जाती है। द्रोणाचार्य ने उसके निशान की प्रशंसा करते बनाते हैं। उसकी वीरता अतिमानीय विख्यात पड़ती है। अतः कौरव सेनापति उसके वध की योजना बनाते हैं।

कृपाचार्य, कर्ण, हु:शासन, द्रोणाचार्य, शकुनि, अश्वत्थामा, द्रोणाचार्य (साम महार्षि) उसे पंड्रहक वर्ष युद्ध के बाद का वध कर देते हैं। इस सर्ग में श्रीकृष्ण और वीर दोस्तों की मार्मिक व्याख्या की गयी है और करण रस में उनकी परिवरण त हुई है।

दूसरे सर्ग में उसकी पत्नी उत्तरा का विलाप और पांडवों के शोक की व्यंजना हुई है।

कवि ने उत्तरा के शोक और विलाप को उल्लोलताव विकसित किया है। कारुण्यक चित्र प्रस्तुत किए हैं। यथा -

"मैं हूँ, वही जिसका हुआ था ध्रुव भंग भंग साथ में
मैं हूँ, वही जिसका हुआ था ध्रुव अपने हाथ में
मैं हूँ, वही जिसका किया था बिपी बिलित अध्यामीनि
भूलो न मुझके नाथ, हूँ मैं अनुचिति चिरसंगमि।" 

इसी सर्ग में अन्य पांडवों के साथ शोककाल अर्जुन की व्याख्या और श्रीकृष्ण के प्रबोधन को चित्रित किया गया है। पांडव युद्ध से विरास्त होने का सोचते हैं। श्रीकृष्ण के प्रकृतिस्य किए
गए अर्जुन ने प्रतिज्ञा की कि “मारू जयद्रथ को न कल में तो अधिन में जल मर्यु।”193 इस सर्ग में उत्तर का विलाप, सुभद्रा एवं दीपायी का प्रताप, युधिष्ठिर की आत्मन्मादि का वर्णन हुआ है।

तीसरे सर्ग में कृष्ण के उद्योगधन से प्रेरित होकर अर्जुन जयद्रथ-वध की प्रतिज्ञा करता है। इसी सर्ग में दीपायी और सुभद्रा के विलाप ने अर्जुन की क्रोधपन्न में दी झालने का कार्य किया है। इस विलाप के पश्चात अभिमन्यु के शर्य के दाह-संस्कार की योजना की गयी है। उत्तरा गर्भवती थी अतः अभिमन्यु के साथ सती न हो सकी। सर्ग का अंत इस नैतिकता से होता है जी “अच्छा-बुरा वस्त्र नाम ही रहता सदा इस लोक में।”194 इस सर्ग से भी कसूर रस की प्रमुखता है।

चौथे सर्ग में अर्जुन की शिव से प्राणापात्र की प्रासा का वर्णन है। कवि ने कृष्ण की योगमया के दृश्य यह कार्य संपन्न कर दिया है। महाकवि का कथा के अनुसार कृष्ण अर्जुन को के कालाश पर्वत पर ले जाते हैं। इसी सर्ग में कृष्ण की कृपा से अर्जुन को अभिमन्यु के साथ-साथ भगवान विष्णु, लक्ष्मी एवं अन्य देवी-देवताओं के दर्शन भी हो जाते हैं और कवि के माध्यम से पाठकों को भी। अर्जुन के शीर्ष को उल्लेखित करने के लिए ही इस सर्ग की मूल्य है। पाणिनियाल द्राप्ति के अन्तर्गत उनके प्रतिज्ञा-पालन का विश्वास बढ़ हो जाता है। तात्त्वार्थ यह है कि जयद्रथ-वध के चौथे सर्ग की नियोजना कवि ने लौकिक धर्मात्मा पर न करते हुए अलौकिकता तथा विद्या धर्मांता पर कहीं है।

पाचवें सर्ग में कौरव-पाण्डव युद्ध तथा दुर्योधन के क्रोध का चित्रण है। अर्जुन की प्रतिज्ञा को असफल करने के लिए जयद्रथ स्वयं की सूरपास्त तक छिपाने का प्रयास करता है। इस सर्ग में अर्जुन का विवशायार्थ मुदु वर्णित हुआ है और भीम का युद्धिस्तर विख्यात गया है। दुर्योधन जयद्रथ की सरस्वती के दृष्टि चित्रित करता है। अपनी सेना की पराजित होते ही देखकर भीर दुर्योधन द्रोणाचार्य पर बरस पड़ता है, द्रोणाचार्य उसे शांत कर विद्या कबी चरण पहना देते हैं। इसी सर्ग में युधिष्ठिर की चित्र, सांत्यक का छल से नक्ता-स्वरूप में प्रस्ताव, तथा भीम द्वारा द्रोणाचार्य के रथ को उठाकर फेंकने आदि का चित्रण अत्यंत सजीव है।

छठे सर्ग में जयद्रथ वध की घटना का मर्मस्पष्ट चित्रण है। इस सर्ग में कथा फिर अलौकिक धर्मात्मा पर पहुँच जाती है। पुरुष-करते-करते अर्जुन थक जाते हैं। सूर्यास्त होने का दृष्टि विख्यात पड़ता है। कृष्ण ने अपनी माया से कुछ समय के लिए सूर्य को ओढ़ान कर दिया था और ठीक अवसर पर उसे प्रख्यात कर दिया। अंत में जयद्रथ ने अर्जुन से युद्ध करते हुए बीर
गति पाई। उसका सिर कटकर उसके तपस्या-रत पिता वृद्धशाप की गोव में गिर पड़ा और वह भी हत हुआ।

सातवें सर्ग में समस्त कथावस्त्र का उपसंहार है। कृष्ण की परब्रह्म के रूप में स्वभित्ति इसका लक्ष्य है। युद्ध भूमि में मूत एवं घायलों को विश्वासा देने हेतु कृष्ण अपने भक्त अरुण के शीर्ष की प्रशंसा करते हैं। इसके बाद युधिष्ठिर भी कृष्ण महिमा का बख़्चन तथा अपनी कृत्तव्यादि प्रकट करते हुए कृष्ण का स्वरूप करने लगते हैं। तब कृष्ण उन्हें हवय से लगा लेते हैं।

कवि के शब्दों में -

“बह भक्त का भगवान से मिलना नितांत पवित्र था,
प्रस्ताव प्रभु जीव का संगम अतीत विचित्र था।”

इस प्रकार कृष्ण के अवतार रूप में वर्णन के साथ प्रस्तुत खंडकाव्य की समाप्ति हो जाती है।

4.5.2.2 चरित्र-चित्रण

प्रस्तुत खंडकाव्य में चरित्र-चित्रण का कोई विशेष आयास नहीं किया गया। अरुण इसके नायक है। अन्य पुरुष पात्रों में कृष्ण, युधिष्ठिर, अभिमन्यु आदि पांडव पत्ते के सत पात्र हैं। नारी पात्रों में उत्तरा, द्रोपदी, सुभद्रा आदि का भी प्रसंगात्मक शील निरूपण किया गया है। इसमें अभिमन्यु वीरत्व का आदर्श है। महाभारत के द्वीण पर्व में अभिमन्यु का वर्णन है। इस वर्णन के अनुसार ही गुप्ती ने कहा है:

“प्रस्तुत हुआ अभिमन्यु रण को शुरू पोङ्ग वर्ष का,
वह वीर चक्रवृत्त भेदन में सहज संज्ञान था,
नज जनक अरुण-तुल्य हो बलवान था, गुणवान था।”

अभिमन्यु ने अपनी प्रेममयी पत्नी के अनुसार से विचलित न होकर गृहधर्म का आचरण किया। युद्ध में उसके कर्म के प्राप्त और दुर्घटना के पुत्र लक्ष्मण आदि का वध किया। अभिमन्यु के युद्ध से संक्रमण होकर द्रोणाचार्य ने चक्रवृत्त का निर्माण किया। अभिमन्यु को चक्रवृत्त में घर कर सात महारथियों में भरपाया किया। रणभूमि में मारे जाते समय वह कहता है:

“हे तात ! हे मातुल ! जहाँ हो हे प्रशांत तुम्हें वहीं
अभिमन्यु का इस भाति मता भूल मत जाना कहीं।”

इस प्रकार अभिमन्यु वीरत्व का आदर्श है, आत्मविलासी है, और उसमें लोकोपकार की भावना प्रवर्त है। उसके कृत्य से उसके चरित्र के वीरत्व, कल्याणिण्य, साहस, निर्भयता आदि गुण स्वतः ही प्रकट हुए हैं।
नवद्रष्ट्र-वध के अन्य प्रमुख पात्र अर्नुन है जो नायक कहे जाते हैं। नवद्रष्ट्र-वध में वे कृष्णाशित हैं। अर्नुन भावनाशील व्यक्ति हैं, जिनका आहत बालस्य और अद्भुत वीरत्व प्रदर्शित किया गया है। लेकिन प्रसनन्त काव्य में अभिमन्यु वध के समाचार से मुक्तिल होने अथवा श्रीकृष्ण के उत्तर विश्व की ओर संकेत करते ही उत्तरा के शोक से अभिभूत हो जाने के प्रसंगों में उसके चरित्र की कमजोरी झलकती है और वे विवेक के धरातल से कुछ मौचे उतरते दिखाई पड़ते हैं।

इस प्रकार कृष्ण का चरित्र महाभारत के अनुसार ही अवतारी लोकस्थापना तथा परशुराम के रूप में अर्कित है। वे ही कर्ता, भारत और हरता हैं। वे अपने भक्त अर्नुन को अभिमन्यु तथा विष्णु आदि अनेक देवी-देवताओं के दर्शन करते हैं तथा नवद्रष्ट्र-वध प्रसंग में वे माया से सूर्यस्त कर उसे पुनः प्रकट कर देते हैं। इस प्रकार कृष्ण इस काव्य में द्विव्य गुणों से विभूषित है।

सुप्रियित्र कवि की मनोभावनाओं को अभिव्यक्त करते हैं और वे उनकी आदर्श-निष्ठा के प्रतीक हैं। इस काव्य में सुप्रियित्र का चरित्र सामान्यतः महाभारत के अनुरूप ही चित्रित किया गया है।

गुप्जी ने इस काव्य में नारी पाठों की कहन स्थिति का निरूपण किया है। उत्तरा, द्रौपदी और सुभद्रा की शोकब्यंजना इसी का उदारहरण है। उत्तरा आदर्श पत्नी है और शत्रुणी के गुण उसके चरित्र में है। द्रौपदी का चरित्र की महाभारत के अनुसार ही चित्रित हुआ है। कुल मिलाकर पाठों का शील निरूपण अवस्था उच्च कोटि का नहीं हुआ है, परंतु उन्हें उनकी स्तुति के अनुरूप ही निर्मित किया गया है।

4.5.2.3 रसात्मकता

नवद्रष्ट्र-वध की वर्णन शाली रसात्मक है, जिसमें भृंगार, बीर, करुणा और शांत रसों के मार्मिक स्थलों की ब्योजना की गयी है। कवि ने न्याय का समाधन, सत्य का प्रतिपादन और शील का आदर्श व्यक्त करने के लिए प्रसन्नता काव्य की रचना की है। भारतीय संस्कृति के दौरान और वीरत्व विषयक आदर्शों को प्रकट करते हुए कवि ने अपनी भक्ति भावना को भी अभिव्यक्त किया है।

4.5.3 शकुंतला (सन् १९१४ ई.)

गुप्जी का तृतीय खंडकाव्य ‘शकुंतला’ का रचनाकाल सन् १९१४ ई. है। कलिवास की अमर कृति ‘अभिज्ञान शकुंतलम्’ पर आधारित गुप्जी की यह रचना नारी चरित्र प्रधान है।

233
कवि ने यह रचना राय कृष्णदास को समर्पित की है। ‘अभिज्ञान शाकुंतलम्’ सात अंकों में निबद्ध है। गुप्तजी ने इस काव्य में सातों के स्त्रां पर शीर्षकों का प्रयोग किया है। इसमें शाकुंतला की प्रेमकथा के विविध प्रसंगों का अन्वित किया है, उसकी सांगोपांग वर्णन अथवा सुविन्यस्त कथानक की नियोजना का प्रयास नहीं हुआ है।

4.5.2.1 वस्तु निरूपण

शाकुंतला का आरंभ ‘उपक्रम’ नामक शीर्षक से होता है तथा अन्य शीर्षकों के नाम हैं,
‘कर्त्तव्य’, ‘मिलन।’ इस तरह यह खंडकाव्य ग्यारह शीर्षकों में विभाजित है।

‘उपक्रम’ में मूल कथा की रसात्मकता को तथा शाकुंतला के आरंभिक चरित्र के महत्त
को प्रकट किया गया है। वस्तुतः इस काव्य की कथा के लिए महाभारत अथवा श्रीमदभक्तिवदन
की आधार न बनाकर महाकवि कालिदास कृत अभिज्ञान शाकुंतल से ही प्रत्यक्ष प्रेणा प्राप्त की है।
इस संबंध में ‘उपक्रम’ में उन्होंने कहा है–

“मूढ़ के बदले मूनभावनी को, यहाँ महीपति ने पाया,
और यहां श्री कालिदास ने, अभिज्ञान-सुधा-रस बरसाया।”

‘जन्म एवं बाल्यकाल’ शीर्षक में विश्वसनीय की तपस्या भंग करने के लिए इंद्र द्वारा
मेनका के भ्रेजे जाने और शाकुंतला के जन्म का संकेत देते हुए काव्य का आरंभ किया गया है।
इसमें शाकुंतला के बाल्य जीवन और उसके पशुपती, वृक्ष आदि से प्रेम का चित्रण है।
इसमें शाकुंतला के कब्ज के आश्रय में लालित-पालित होने के बुद्धांत का संकेत में विवरण दिया गया
है। ‘दर्शन’ में शाकुंतला और पुलंदर की प्रथम भंद का वर्णन करते हुए कवि ने दोनों के मन में
पूर्वराग का उद्देश्य दिखाया है। प्रारंभ में यह प्रेम सम है। शाकुंतला की भाववशाय का वर्णन प्रस्तुत है–

“विवश आया बिहुंढ़ बन काम पत्रों और–
बिहुंढ़कर भी वे परस्पर बन गये चित्चित।
मार्ग में, मिससे ठूकती ठहरती सी-बार–
गई व्यया शाकुंतला गुप को निहार निहार।”

‘पत्र’ शीर्षक काव्यांश में शाकुंतला के पूर्वराग की अवस्था का वर्णन करते हुए उसके
प्रेम-पत्र की रचना का विवरण दिया गया है। इस सर्ग में दोनों के विरह उत्साह की कथा है।
यह सर्ग ‘कुंडलिया’ नामक छठ में रचा गया है।
‘अर्थी’ शीर्षक में शाकुंतला और दुर्यों के गंधर्व-विवाह तथा गोरों के हास-परिहास का चित्रण है। इसके अंतर्गत संपोषण-मुख्यार का संस्कार वर्णन किया गया है और दोनों प्रेमियों के विवाह-बेला के मामले में संवाद का रखा गया है।

‘अभिशाप’ में प्रिय के ध्यान में मघश शाकुंतला के दुर्यों के द्वारा अभिशाप होने की घटना का वर्णन किया गया है। इसमें विन्दुलमणि व्यक्ति का चित्रण हुआ है। इस सर्ग में शाकुंतला दुर्यों विषयक चित्रन में लैन विधानार्थी गर्वित है। साथ ही इसमें दुर्यों की रूपक के आगमन और शार का वर्णन है। शायमोचन के लिए कवि ने दुर्यों की रूपक से कहलावाए है।

“आवेगी सुध मुद्रिका निरंज के उद्यान के दुर्यों को।”

‘विवाह’ शीर्षक में शाकुंतला की आश्रम से विवा सखियों वृक्षों आदि से उपहारों की प्राप्ति और कथा के उपवेश आदि का वर्णन है। ‘विवाह’ में वर्तुल बेटी की विवाह है, जिसमें कथा वे बास्तव में अभिभवक करते हुए प्रस्तावनात्मक शाकुंतला के आसन आधार वयन का कल्यन दृष्य चित्रित हुआ है। इसमें सुमुक्तियों के बील और स्वदेश गए उल्लेख किया गया है। कथा ने आदर्श पत्नी तथा समाचरण का भी उपवेश दिया है।

‘त्याग’ शीर्षक के अंतर्गत दुर्यों द्वारा शाकुंतला के त्याग और आश्रमवासियों द्वारा शाकुंतला को अकेले पथ पर छोड़ कर चलते जाने का प्रसंग है। यह प्रसंग कारौंकिक है, जिसमें दुर्यों ने गर्भिणी शाकुंतला को शापवा मिस्त्रूत ही नहीं, परित्यक्त भी किया। इसी सर्ग में शाकुंतला को उसकी माँ मेनका उड़ाकर लौटाती है तथा नेमकूड पत्र जरूरत पर कथा कालिन से आश्रम में छोड़ देती है।

‘स्मृति’ सर्ग में मछली के पेट से प्राम मुद्रिका को देखकर दुर्यों को शाकुंतला की स्मृति हो जाती है। वे विरह बिहुत हो उठते हैं। पुरुष के विवाह का यहाँ पर वर्णन है।

‘कर्तव्य’ सर्ग में दुर्यों के दृष्टि का विचार है। कर्तव्य शीर्षक में दृश्य सुरस्त गायिका के आगमन तथा दुर्यों के द्वारा जाने का प्रसंग है। दुर्यों कालानिष्ठा से युद्ध करते हुए इंद्र की सहायता के लिए प्रस्तुत हुए और उच्चत भी।

‘मिलन’ इस खंडकथा का अंतिम सर्ग है। देवराक्ष वंशपाद कर दुर्यों मातल के साथ नेमकूड पत्र जरूरत पर कथा के दृष्टि के लिए आते हैं। अभिका किशोर के समान दुर्यों का सर्वप्रथम सर्वत्क बालक के दर्शन होते हैं। वह दूध पीते सिंह-शावक को खींचता है तो कभी दौं गिनने के लिए उसके मुँह खोलने का आदेश करता है। यह दृष्टि देखकर पूर्व-स्मृतियों
जागृत हो जाने से दुःख मुश्लिम हो जाते हैं। शुभ्र त्रिकोणम की समाप्ति पर हम भेंट शाकुंतला से होती है और इस प्रकार विषय-प्रस्तर में परिणत हो जाता है और ध्यान समाप्त हो जाती है। इस रचना में प्रभ की चर्चा परिणति व्याप्त हुई है जो कर्त्तव्यपालन और उक्त कर्त्तव्यपालिता के द्वारा परिपुष्ट की गयी है। अपराधी प्रिय ने प्रिया के पैरों पर पड़कर श्रम याचना इस प्रकार की है।

"पैरों पर गिर पड़े प्रिया के पूरवर, /शाकुंतला ने कहा श्रम का रूप पर--

"उठो नाथ! वह कुछ न तुम्हारा दोष था, /भुज्ज पर ही अजात देव का रोश था।""

8.5.3.2 शील-निरूपण

'शाकुंतला' काव्य एक प्रकार से कालिवास के अभिजात शाकुंतलम का पद स्पष्टतरण है। इसलिए इस काव्य में शाकुंतला की चरित्रगति विशेषताएँ भी सामान्यतः अभिजात शाकुंतलम की शाकुंतला के समान ही हैं। वह पुष्प तपोबन की रज में खेलते हुए बड़ी हुई थी। उसके रूप-रंग सीरम से सारा आकाश महक उठा था। उसका हवा कोमल और सवथ था। विएषी, धर्म में अनुरुक्त, आस्था रहित, सेवा-शुष्कृता तथा अतिथियों का सत्कार करनेवाली थी। दुःख मिलन पर उसका हवा अनुराग से भर उठता है--

"करते रचना पत्र की घरे हुए प्रिय ध्यान,
वह वियोगिनी बन गई संयोगिनी-समान।""

अभिजात प्रसंग में शाकुंतला की वियोगावस्था का चित्रण है, तो विएषी के समय उसकी अख्तियार देखते ही बनती है। 'त्याग' प्रसंग में भी शाकुंतला के नारी भावों तथा लज्जा आदि की अभिव्यक्ति हुई है। 'मिलन' सर्ग में शाकुंतला कर्त्तव्यप्रारंभ ममतामयी मां के रूप में चित्रित है। इसी सर्ग में उसकी उत्साह और समाशीलता का भी परिचय मिलता है। सारंश में गुजरी की शाकुंतला भी कालिवास की शाकुंतला के समान सेवामयी दयामयी, सहाय्य, सुकुमार और रूप एवं गुणों से संपन्न है।

शाकुंतला में दूसरा चरित्र दुःख का है। इस ग्राम में गुजरी ने इसके दश्तिनापुर का समाप्त चित्रित करते हुए इसकी चरित्रगति विशेषताएँ इस प्रकार चित्रित की है-- (1) 'आरंभ' में दुःख प्रभ, विज्ञासी और विक्री के रूप में चित्रित है। (2) 'त्याग' सर्ग में वह धर्मानुपालियों और कठोर शास्त्रक है। (3) 'स्मृति' और 'कर्म' सर्ग में उसका विराह स्वरूप है। (4) कर्म सर्ग में उसके चार रूप है-- न्यायी, आतातायी को नष्ट करने के लिए तपर, अतिथि
सेवक, देवकार्य के प्रति सनन्द। (४) ‘मिलन’ सर्ग में उसमें क्रियाओं के प्रति राशिभाव और नारी तथा पति के प्रति कल्याण निष्ठा का भी ज्ञान होता है।” ३२

४.५.३.३ रसायनकर

शकुंतला काव्य में कवि ने वियोग श्रुंगार की संयमित नियोजना की है। कवि ने शकुंतला के आश्यान पर कलिय भावना-मूलक और विवरणात्मक कविताओं रचकर और उन्हें पूर्वपर संबंध में संग्रहित करके पूरे कथानक का आभास दिया है। उन्होंने अपने वर्णनों को संबंधों की नियोजना करके सजीव तथा छोटे-छोटे चित्रों को सजाकर आकर्षक बनाने का उपक्रम किया है। उन्होंने इस पौराणिक कथा-काव्य में भी अपनी राष्ट्र-भावना की अभिव्यक्ति का अवसर खोज लिया है। काव्य को अंत में उनके ह्रदय की देशविषयक पीढ़ा पाठक के ह्रदय में भी एक टीस उत्पन्न कर देती है। यथा-

“भारत ! अब वह समय तुम्हें क्या बताये होते ?/होता उसका कर्म सहर्ष विषाद है?
वे विन अब क्या तुम्हें मिलेगी मिलने फिर अहो !/इसका उत्तर और कीन देगा कहो ?” ३५

इस प्रकार शकुंतला गुप्तजी की रसमय कृति है। इसमें वियोग श्रुंगार की संयमित व्यंजना हुई है। तथापि कालिवास की सी मार्तिकता इस काव्य में नहीं आ पाई है। खड़ी बोली का ललित्य इस काव्य में दृष्टिगोचर होता है।

४.५.४ किसान (सन् १९१६ ई.)

‘किसान’ खंडकाव्य का प्रकाशन डॉ. उमाकांतजी ने सन् १९१६ ई. बताया है, जबकि
‘हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास’ में इसका रचनाकाल सन् १९१५ बताया है। इसमें लिखा है-
“सामाजिक खंडकाव्य किसान का रचनाकाल सन् १९१५ है। सन् १९१५ की बंबई कवितेशा अधिवेशन के दसवें प्रस्ताव में दक्षिण अफ़्रीका में प्रवासी भारतीयों की दुःख प्रकट निबंध किया गया था। इसी वर्ष फीजी की लिरियट प्रथा बंद हुई थी। दरिद्र कुष्ठ की दुःखबाय जीवनगाथा को गुणजी ने करण किया सिक्त भाव भंगिमा से इस काव्य में प्रस्तुत किया।” ३६
किसान काव्य में समसामतिक जीवन का करण चित्रण किया है। डॉ. उमाकांत का मंत्व है-
“इसमें भारतीय किसान के उन्मुखत जीवन का करण चित्रण छोटबड़ है। इस काव्य का उदेश्य किसानों के प्रति सहजमुक्ति का उद्देश्य करता है। अतएव उनकी वास्तव दशा का कालिक चित्र उपस्थित हुआ है जिसमें काव्य में करण का प्राप्तव्य है, वैसे सबकाल स्थल पर हास्य का भी स्पर्श है पर सामान्यतः आयतन करण का ही सामान्य।” ३७ डॉ. नूरनाथ सिंह
का कथन उल्लेख्य है- “किसान की कथावस्तु एक किसान का संपूर्ण जीवन है। भारत से गुलाम बनाकर विवेकों में जानेवाले किसानों की कहानी का वर्णन करना कवि का प्रेम रहा है। इसमें प्रभावकरता रूप से एक भारतीय किसान का देश का सत्त्र विशिष्ट रूप से कहा है।”

“किसान आत्मकारक शैली में लिखा गया खंडकाय्क है और इसमें कवि की कल्पना का अप्रतिमतत तथा मर्मस्पर्शी प्रवाह विद्यमान है। यह रचना गुप्तजी ने किसानों को समर्पित की है।

8.5.4 कथावस्तु

इस संस्कार खंडकाय्क में गुप्तजी ने किसान के संपूर्ण जीवन को आत्मकारक के रूप में प्रकट किया है। वस्तुतः यह किसान की कहानी का विवरण ही है। इसमें कृषक के सरल स्वभाव, अथवा परिस्थितियों और वीरत्व का चित्रण करते हुए उसकी प्रतिकृत परिस्थितियों की वारसानता का आलेखन किया गया है। डॉ. कमलकांत पाठक ने लिखा है- “गुप्तजी ने ‘किसान’ काव्य में केवल किसान की दुर्दशा का ही चित्रण नहीं किया है, वरन् कुली-प्रथा और सेनिकों की भारी आदि का निरुपण भी किया है। यह किसान, कुली और सेनिक तीन प्रकार के जीवन-खंडों का आलेखन है। इसमें एक पत्र की ही वे तीनों परिस्थितियों हैं। किसान का शील-स्वभाव केंद्रस्तरी वस्तु है और कृषक की समस्ता पूरी घटना व्यापार के मूल में स्थित है।”

इस खंडकाय्क को कवि ने सर्गों में विभाजित न करके, शीर्षकों में विभक्त किया है। अर्थात् यह काव्य आठ सर्गों में विभाजित है तथा सर्गों के शीर्षकों के नाम हैं- ‘प्रार्थना’, ‘बाल्य और विवाह’, ‘गांवस्थ्य’, ‘सर्वस्वात’, ‘देशत्याग’, ‘फिनी’, ‘प्रत्यावर्तन’ तथा ‘अंत’।

‘प्रार्थना’ अंश में किसान ने अपनी दुर्दशा का वर्णन करते हुए भगवान से अपने उद्दार के हेतु प्रार्थना की है। इसमें कवि किसानों की जननीय दशा की ओर संकेत करते हैं और कहते हैं कि हें इसका इच्छा भी वृद्धि पाएंगे। एक किसान अपनी जीवन कथा लिखता है। कवि के शब्दों में—

“पाया हमने प्रभो! कौनसा बास नहीं है?
क्यों अब भी परिपूर्ण हमारा बास नहीं है?
मिला हमें क्या नटक का तास नहीं है?
विश झांसे के लिए टका भी पास नहीं हैं।”

238
‘बात्य और विवाह’ के अंतर्गत वह सौभाग्य, शांति, समृद्धि आदि से युक्त अपने आरंभिक जीवन का विवरण प्रस्तुत करता है। इसमें ग्राम्य जीवन की सरल, और वैन्यभरी सुखद स्मृतियों का वर्णन हुआ है।

‘गाहस्वध्य’ में जीवन की सभी मार्मिक कठिनाइयों सूखने के बावजूद आदि का वर्णन हुआ है। जीवन की घोर जिपास्तियों एक किसान के समय सुरथ की तरह भी बाये खड़ी है। इसमें पुलिस, नर्मदार और साड़फार के आत्याचारों का वर्णन करते हुए वह अपने माता-पिता के निधन का वृत्तांत निरुपित करता है।

‘सर्वस्वत्त’ में किसान को सामाजिक शोषण और न्याय निमय पूर्ण: निःस्व कर देते है। ‘देशत्याग’ में उसके कुली जीवन के वृत्तांत का विवरण दिया गया है। ‘देशत्याग’ शीर्षक से इस कथा-काव्य के दृश्य में परिवर्तन आता है। काशी में कलुआ एक आरकाटी के विसुल में फैस जाता है। वह मनोज ने फूसलाकर उन्हें फिजी आदि किशोरों में भेजकर अपना कमीशन बनाता था। इस तरह कलुआ और लोगों के साथ फिजी भेज दिया जाता है, जहाँ वह किसान से कुली का जीवन व्यतीत करने को विवह है।

‘फिजी’ अंश में अधिकारियों का अनेक आचरण प्रकट करते हुए कथा नायक ने अपनी पत्नी की मृत्यु का कहरोत्पत्त वर्णन किया है। फिजी में भारतीयों के साथ आमान्तिक व्यवहार, गर्भवती कुलवती के साथ ओवरसियर द्वारा बलात्कार और उसकी मृत्यु से कलुआ अत्यंत व्यथित हो जाता है।

‘प्रत्यावर्तन’ में उसके स्वदेश लीट आने का विवरण दिया गया है और उसकी कृतजना की तथा माता-पुत्र की व्यंजना हुई है।

‘अंत’ अत्यंत संकिष्ट प्रशंसा है। इसमें टिमारिस के युद्ध में किसान के वैरागति पानी की घटना का वर्णन किया गया है। कलुआ के स्वदेश लीट के दौरान महायुद्ध आयं आयं गया था। महायुद्ध गाँवी ने इस युद्ध में अंपोजी शासन का साथ देने के लिए देशबासियों को सेना में भर्ती होने का आह्वान किया था। कलुआ भी इसी प्रेमित सेना में भर्ती हो जाता है। टिमारिस के तत्पर ही यह भविष्य हो जाता है। कुछ चेतना आने पर वह देखता है कि उस समय का सवर्ण विकटोरिया क्लास उसकी छात्री पर लटक रखा है। वह इसमें प्रसन्न होता है दिन दिन उसकी प्रसन्नता बढ़ती हुई दीपक के समान है। मस्ते-मस्ते भी वह स्वदेश चिंतन करता है।

“भारतीय मेरे बांधव हैं, घर है मेरा सारा देश,
बस यह भार आत्म-चरित ही है मेरा अंतिम संदेश।
इससे अधिक और क्या में कह सकता हूँ भगवान,
मेरे साथ देश के सारे डुःखों का भी हो अवसान।

### ७.५.४.२ पात्र-परिचय

इस कृति का कथानायक कल्लू एक सामान्य किसान है जो विधि की विरोधना से व्यथित है। ‘किसान’ काव्य में कल्लू और कुलबती की जीवन कथा, उनके शील एवं उनकी दुर्दशा का वर्णन है। किसान का बाल्य जीवन सुखदृष्ट था। उसका बचपन पशुधन चराते हुए प्रकृति की गोद में व्यतीत हुआ था। युवावस्था में उसने जिस बालिका के तंदुर से प्राण बचाये थे उसका नाम कुलबती था। कुलबती के साथ कथा नायक का विवाह तो हुआ किंतु पहले के ऋण और विवाह खच्च के लिए उसके पिता ने पशुधन आदि बेच दिया। विवाह के साथ ही कथा नायक को एक महान संकट का सामना करना पड़ा। सुहागरात्र को ही पुलिस उसे पकड़कर ले जाती है। रिश्वत देकर कल्लू को तो जेल से छुड़ा लिया गया किंतु अंततः जमींदार-महाजन की लूट, अनावृत्ति और महामारी का यह परिवार शिकार हो गया। माता-पिता की मृत्यु, पशुधन आदि के चले जाने से कल्लू निराश हो गया। पुलिस जमींदार और महाजनों के अत्याचारों से व्रत होकर वह गाँव छोड़कर काशी आ जाता है।

काशी में आरक्षियों के जाल में फंसकर वह कुली बनाकर फिरी भेज दिया जाता है।

वहं ओवरसियर की गृहस्थता से उसकी पत्नी की मृत्यु हो जाती है। संयोग से कुली प्रथा के बंद होने पर किसान स्वेद़ा लोटा। महायुध छिड़ जाने पर वह भारतीय सेना में भर्ती होता है और टिगरिस के तट पर युद्ध करते हुए बीरगति को प्राप्त होता है। इस प्रकार गुस्सा ने इस काव्य में किसान के जीवन के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला है।

### ७.५.४.३ रसात्मकता

‘किसान’ एक भावनाशील आकाश्यान काव्य है। कवि ने इसमें कृषक समस्या, कुली-प्रथा, सैनिक जीवन आदि सामाजिक विषयों का निरुपण करते हुए अनेक वक्ताओं और समोड आचरणों को अनिवार्य सिद्ध किया है। पुलिस, जमींदार, महाजन, शासनाधिकारी, आरक्षी आदि सामाजिक जीवन की विकृतियाँ हैं। कवि ने मानवता की भावना को प्रश्रय देते हुए और अनेक जुलूकियों का उल्लेख करते हुए यह करूण-रस का खंडकाव्य रचा है। यह
दुःखान्त रचना है और इसमें पद्मनाथ प्रथम वर्ण शैली का प्रयोग हुआ है। आत्मकथा का रूप देकर इसे मर्मस्थली बनाया है।" अंत में डॉ. सतीश गर्ग का मत उल्लेखनीय है-"इस काव्य में कवि ने विशेष परस्परित्थितियों और भावनाओं का तो इशारता के साथ समन्वय किया है। इसके मात्र नायक ने जिस तरह से और जिन परिस्थितियों में देश पर प्रभावित किया है, वह घटना कवि की देवभक्ति, राष्ट्रीय-भावना, समाज-भावना और इसकी समसामयिक सामाजिक चेतना को भी व्यक्त करती है। वास्तव में यह दुःखान्त काव्य कार्यक्षेत्र भारे से आत-प्रोत होकर एक प्रेरक काव्य है।" इस प्रकार संपूर्ण काव्य में कल्याण-रस की धारा प्रवाहित है।

4.5.5 पंचवर्द्धी (सन् १९२५ ई.)

रामायण के शूर्पणखा प्रसंग पर आधारित 'पंचवर्द्धी' गुजराती की प्रमुख रचनाओं में से है, जिसका प्रकाशन सन् १९२५ ई. में हुआ था। इस काव्य में कवि की काव्य साधना मुख्य होकर उनके साहित्य में प्रतिष्ठित रूप में उभरती है। इस काव्य में चरित्र प्रझानता, नाटकीयता और नवीन उद्यानीय प्रकीर्ति उल्लेखनीय हैं। डॉ. उमाकांत जी का कथन है-"इसका कथानक राम सहित्य का चिरपरिपक्वतात। आयुक्त-शूर्पणखा प्रसंग है। वास्तव में इसमें कविता नवीन उद्यानीय भी हैं जो कथामूलक बनी है। अन्य कविता के विकास एवं प्रतिपादन शैली निकटता प्रति कवि के अपने हैं, अतएव इसकी धोलकिता असांविंद है। रामायण के इस प्रसंग की कवि ने अपनी लेखनी के स्पष्टता से अधिक विश्वासनीय, अधिक मानवीय एवं अत्यधिक तेजस्वी तथा आकर्षक बना दिया है और यहां ही पिछले पक्ष कथानक में तरल रसात्मकता एवं स्निधान माधुर्य का सन्दर्भ किया है- कल्याण, मघुर, हास्य-विनोद ने इसे और भी सजीवता प्रदान की है।" डॉ. कमलाकांत पाठक का मत भी इसी प्रकार का है। उनका कथन दृष्टिकोण है- "पंचवर्द्धी" में राम-कथा के ऐसे प्रसंग की उद्यानीय की गई है, जिसमें लक्ष्मण को प्रमुखता प्राप्त हो सके। इसके पूर्वती खंडकाव्यों में ख्यात वृत्त को प्रायः यथा का त्यो बनिकर कर लेने की पद्धति अपनायी गयी थी। उनमें जहाँ-तहाँ गीत संकेत मात्र कवि ने अपनी ओर से रखे थे। पंचवर्द्धी और उसकी परवर्ती रचनाओं में वस्तु-शोभन हुआ है और नवीन उद्यानीय की गयी है।" डॉ. सूर्यनाथ सिंह का अभिप्राय है- "इसका कथानक रामायण का चिंता प्रसिद्ध शूर्पणखा प्रसंग है प्रतिक अधि कवि ने अपनी कल्याण शक्ति का सुंदर परिचय दिखाकर नवीनता का समावेश किया है। यह नवीनता है एक रक्षावृक्ष के चरित्र में मानवीय भावनाओं का चित्रण। गुजरात का आदर्शवादी दृष्टिकोण चरित्र-विचार में वस्तु हुआ है।... इस पौराणिक कथानक को जिस नवीनता से कवि ने प्रस्तुत किया है उसमें कवि की धोलकिता स्पष्ट परिलक्षित होती है।" इस प्रकार
पंचवदी खंडकाव्य में गुरुगी ने राम-वनवास की एक विशेष घटना को काव्य के सांचे में दाला है। पंचवदी की कथा का उपजीवी गोस्वामी तुलसीदास कृत ‘रामचरितमानस’ का अर्थयुक्त है। वाल्मीकि तो भी इन्हें उपरण मिलता है, क्योंकि कथानक का मूल उन्सा वाल्मीकीय रामायण ही है। गुरुगी के अन्य खंडकाव्यों की तुलना में पंचवदी की कथा बहुत छोटी है। यह एक सर्ग रचित तथा एक सी अद्वितीय छठों का लघु खंडकाव्य है।

8.5.5.1 कथावस्तु-विवेचन

कथावस्तु के सृजनिकोण से जब हम पंचवदी पर दृष्टिपात करते हैं, तो राम-लक्ष्मण के वनवास काल का एक छोटी-सी घटना इसमें वर्णित पाते हैं। मानस की घटना को लेकर खंडकाव्य रचने का हिंदी में वह प्रथम प्रयास था और जिसमें मैं उपाधियों का प्रयोग किया वे भी इस क्षेत्र में मौलिक ही है। लक्ष्मण दुबारा शूर्पंख खो नाक-कान काटकर विकलांग बनाने की कथा को इसमें अपनाया गया है। प्रारंभ में कवि रामचरितमानस प्राकृतिक सुमाय का वर्णन करते हैं। चंद्र की धबल किरणें जल और नल में नृत्य कर रही हैं और पृथ्वीतल पर तो मानिस किसी ने श्वेत-धबल चादर ही बिखा दी है। ऐसे ही समय में हम एक धनुधारिक बीर को उपल-शिलाम पर बैठकर अपनी कृतियों की रक्षा में तत्पर पाते हैं। इसके उपरांत कवि एकाकी लक्ष्मण के द्वद्व-सागर में उद्वेशित भाव तरंगों का विशेषण करते हैं। प्रकृति के बीच एकाकी जागरूक बैठ हुए लक्ष्मण का मनस्थित मार्ग हो जाता है, जिसके माध्यम से यह सुचना मिलती है कि तेरह वर्षों का लम्बा समय लक्ष्मण राम और सीता की सेवा करते हुए वन में बिंदा चूके हैं और अर्धांश सुखी हैं। भाषा एक दु:ख उनको है कि आत्मीय स्वर्गन्य अयोध्या में हैं और उनके द्वारे दर्शन उनकी अनुमान कर अपने को दुखी बना रहे होंगे।

उद्धव ने मुस्तरण करते हुए लक्ष्मण एक क्षण के लिए और बचने का अनुमान कर अपने को दुखी बना रहे होंगे। उद्धव ने मुस्तरण करते हुए लक्ष्मण एक क्षण के लिए और बचने का अनुमान कर अपने को दुखी बना रहे होंगे। उद्धव ने मुस्तरण करते हुए लक्ष्मण एक क्षण के लिए और बचने का अनुमान कर अपने को दुखी बना रहे होंगे।

उद्धव ने मुस्तरण करते हुए लक्ष्मण एक क्षण के लिए और बचने का अनुमान कर अपने को दुखी बना रहे होंगे। उद्धव ने मुस्तरण करते हुए लक्ष्मण एक क्षण के लिए और बचने का अनुमान कर अपने को दुखी बना रहे होंगे। उद्धव ने मुस्तरण करते हुए लक्ष्मण एक क्षण के लिए और बचने का अनुमान कर अपने को दुखी बना रहे होंगे।
कर देता है। सीता से भी जब समस्या नहीं सुलझी तो लक्ष्मण के मन करने पर भी राम को जाना लाती है। राम के सहज सींद्रों के देखकर शूरुपणखा सेमाचित हो उठी और राम से भी उसने वही प्रस्ताव रखा जो लक्ष्मण से वह रख चुकी थी। राम ने प्रस्तुत में कहा कि वे तो वन में पतनी के साथ रहते हैं, परंतु उनका छोटा भाई विवाहित होते हुए भी यहाँ एकाकी जीवन व्यतीत कर रहा है तथा वह स्वयं भी सर्वप्रथम-उसी को अपने प्रबल प्रेम का वान कर चुकी है अतः वह चाहे तो उसे अपना बना सकती है। शूरुपणखा जब पुनः लक्ष्मण की ओर आकृष्ट होना चाहती है तो लक्ष्मण उसे यह कह कर रोक देते हैं कि आर्य राम से विवाह का प्रस्ताव कर लेने के कारण वह अब उनके लिए पूजनीया हो गयी है। क्रोधित होकर रमणी अपना प्राकृत रूप ग्रहण करती है और भील लक्ष्मण तीर्थ दातार से नाक-कान काटकर उसे विकलांग बना देते हैं। वह चिंतात ती हुई वहाँ से भाग जाती है और धीरे-धीरे पुनः वहाँ का वातावरण शांत हो जाता है।

इस प्रकार अपने इस रूप में यह कथानक तुलसी के ‘मानस’ से भिन्न हो जाता है।

कथानक को प्रकृति की पृष्ठभूमि प्रदान कर कवि ने उसे आगे बढ़ाया है। लक्ष्मण का मनः चित्रण भी अपने आप में महत्वपूर्ण और कथानक की मौलिक देन है।'44 पंचवटी चरित्र प्रथान खंडकाय है। अतएव उसमें चरित्रों के चित्रण द्वारा ही कथानक विकसित हुआ है। कथानक बहुत छोटा-सा है परंतु कवि अपने कोशल से चारों ओर का वातावरण अनुकूल बनाता हुआ कथा के प्रवाह को अर्थात मंत्र मिट जाते हुए आगे बढ़ाया है।

8.5.1.2 पाठ-योजना

पंचवटी में पाठों की संख्या अधिक नहीं है। लक्ष्मण राम और सीता, शूरुपणखा इन चारों के चरित्र को अपने खंडकाय में गुप्ती के द्वारा अपनाया गया है। नाटकीय शैली से चरित्र-विकास इस चरित्र-चित्रण की विशिष्ट उपलब्धि है। लक्ष्मण पंचवटी के विशिष्ट पाठ हैं।

उनके चरित्र का प्रकाश में लाने के लिए ही गुप्ती ने पंचवटी की रचना की है। पंचवटी में सर्वप्रथम वे एक घनुपाधी के रूप में सामने आते हैं, जो राधि में एकाकी एक उपल-शिला पर बैठ हुए मनःचित्रण में लीन है। चारित्रिक बन की विद्या ज्योति से उनका अंतर प्रकाशित है। कोई लोभ-मोह अथवा भय उहें अपने स्थान से विचलित नहीं करता। डॉ. कमलकांत पाठक ने कहा है- "लक्ष्मण अपने समस्त लोक-प्रसिद्ध गुप्तों के अतिरिक्त भी कुछ हैं और वह उसका 'भोगी कुसुमाधुष योगी' रूप है। वे उग्र ही नहीं चित्रन्यशील भी हैं। प्रहरी के रूप में प्रकट हुए हैं और पंचवटी की सुस्पष्ट प्रकृति के तथा चाँदनी रात के वातावरण में उन्हें अपने परिस्थितियों की
स्मृति हो आई है। उन्हें कवि ने ‘धीर धीर निर्मानकमना’ कहकर आत्म-संयमी चरित्र के रूप में उपस्थित किया है।’’9 लक्ष्मण पंचवर्ती के लक्ष्मण अग्रज-सेवा-ब्रत-ब्रती है। वह कर्मयज्ञ, उदार भातुरनेहि और धीर भी है। आयार राम और भाभी सीता पर उनकी अनगाथ श्रद्धा है। लक्ष्मण का यह स्नेह केवल भाई और भाभी तक ही सीमित नहीं वरन् संपूर्ण गोचर प्रकृति तक प्रसारित है। प्रकृति के प्रति लक्ष्मण के मन में अपरिमित प्रेम है। लक्ष्मण धीर धीर और संयमी है। लक्ष्मण की नित्यियतता ने शूर्णक्षा के प्रेम प्रस्ताव को तर्कपूर्ण संवादों द्वारा अनुचित सिद्ध किया। वे प्रेम को आत्म-प्रत्यय और मोह को रूपाकरण या वासना मानते हैं, शूर्णक्षा उनका तपभंग करना चाहती है, किंतु लक्ष्मण उसके सामने अविचल रहते हैं। शूर्णक्षा के प्रेमातिथ्य का बड़ा वृद्धि से विरोध करते हैं-

हा नारी ! किस प्रेम में है तु, प्रेम नहीं यह तो है मोह,
आयाम का विवास नहीं यह, हे तेरे मन का विद्रोह,
चिथ से भरी वासना है वह, सुभो-पूण्य वह प्राप्त नहीं,
रीति नहीं, अनरीति और यह, अति अनीति है, नीति नहीं।’’9’

सीता ने उन्हें तपस्वी कहा है। उनके चरित्र का बीरोहत रूप यहाँ निरूपित नहीं हुआ, वरन् उन्हें प्रत्येक नित्यियत, नित्यियत, तपस्वी और त्यागी के रूप में विचित्रित किया है।

राम और सीता अप्रधान पात्र हैं। राम का शील और आदर्श उच्च कोटि का है। वे एक पतनीयन की सामाजिक मर्यादा के रक्षक हैं। सीता परिवारिक जीवन में माधुर्य का समावेश करनेवाली रण्य हैं। वे श्रीलाल शील है और देवर-भाभी-संवाद के द्वारा परिवारिक जीवन का सौभाग्य शांति और संतोष व्यक्त करती है। कवि ने राम-सीता को यहाँ मानवीय रूप में प्रस्तुत किया है।

शूर्णक्षा इस काव्य की प्रतिनिधित्वा है। उसके चरित्र में मानवीय और वाणीय विशिष्टताओं का अद्वुत मिलन है। वह कामार्त रण्य है, जो लक्ष्मण पर मुख्य होकर उन्हें पति बनने के लिए संचेष्ट हुई। अपने प्रेम-प्रस्ताव को वह नि:संकोच प्रकट करती है। उसका रूप-चित्रण कवि ने किया है–

“श्री अकबर अतुल वासना दीर्घ वुझों में झाल रही,
कमलों की मकरंज-मधुरिमा मानो छबी से छल रही।”9’
जब लक्ष्मण को वह प्रभावित हो गया तब राम के प्रति आसक्ति विद्वाने लगी। पर
दोनों ओर से जब उसे निराश होना पड़ा, तब उसका दानवी रूप प्रकट हुआ। कवि के शब्दों में-

“जहाँ लाल सादी थी तनु में, बना चर्म का चीर वहाँ,
हुए अस्थियों के आमूण, थे मणि, मुक्ता-शीर जहाँ।
कथाओं पर थे बड़े बाल वे बने अहो, आंतों के जाल,
फूलों की वह वर्माला भी हुई मुंडाला सुनिश्चाल।”

इस प्रकार कवि ने उसे पापबृत्ति का प्रतिरूप माना है और उसी के अनुरूप उसका
चरित्रांकन किया है।

8.5.5.3 प्रकृति-विचार

पंचवटी की संपूर्ण घटना प्रकृति की विशाल क्रोध में ही परिलिप्त होती है। आरंभ से अंत
तक हम प्राकृतिक रंगमंच पर पाठकों को आगमन करते देखते हैं। पंचवटी में रूप प्रकृति का
स्वच्छंद रूप चित्रित हुआ है और वह प्रायः मानवीय कृत्यों तथा मनोविकारों की पृष्ठभूमि के
रूप में रखी गयी है। स्थान समय और परिस्थितियों का चित्रण करने के लिए बन्य प्रकृति
की सुंदरता का विनियोग हुआ है। दृश्य-विचारण की शैली में प्रकृति का अच्छा वर्णन किया गया
है और वह गतिशील भी है। पंचवटी का प्रारंभ इन परिवर्तियों से होता है--

“चारू चंद्र की चंचल किरण, खेल रही है जल-घन में,
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है, अब नींद और अंध हो तल में।”

प्राकृतिक वेषभ के चित्र ढिबेदी युग में पहली बार पंचवटी में देखने को मिलते हैं। संक्षेप
में, प्रकृति की दृष्य-बाणना सुचु, प्रभावितपाद और उल्लसित है। यह गुरुजी का प्रथम काव्य
है, जिसमें प्राकृतिक वर्णनों को नियोजित किया गया है तथा उसके आलंकारिक प्रयोगों पर भी
ध्यान दिया है। यथा--

“हैंसने लगे कुसुम कानन के देख चित्र-ता एक महान,
विकस उठीं कलियाँ ढालों में निरंक मेधिली की मुखान।
कौन-कौन से फूल खिले हैं, उन्हें गिनाने लगा लम्बी,
एक एक रुग्ण गुस्सा करके जुड़ आईं भाँईं की भीर।”
पंचवटी कौमल भावों का काय्य है। रस की वृद्धि से यह श्रृंगार रस प्रधान वृद्धि है। सहायक रसों में शांत, हास्य, वीर, बीमारत्व एवं रोमांच आए हैं। पंचवटी का पूर्वचर्च श्रृंगार एवं हास्य की संश्लेषण योजना है। अंत तक विविधतम श्रृंगार की अवस्थिति है। वीर लक्षण के द्वारा प्रियंकाओं का स्मरण श्रृंगार की पृष्ठभूमि को तैयार करता है। शृंगारखा के प्रसंग में श्रृंगार के अनौच्यत्व का प्रदर्शन किया गया है। राम और सीता को आभारित वातावरण में उपस्थित किया गया है और हास की स्पष्ट व्यंजना भी हुई है। शृंगारखा के श्रृंगार का वर्णन संप्रियत स्वाभाविक है, वह उच्चप्रांत नहीं है। शृंगारखा की वर्णनक वाणी से पूरा माहील रोमांच रस में बनक जाता है। गुफ्ती ने लिखा है- “बिकृत, भयानक और रोमांच प्रकटे पूरी बादों-से।” यदि शृंगारखा के पंक्ति में रोमांच रस की सूचना है तो तीता के पंक्ति में भयानक रस की। आशाय यह है कि पंचवटी श्रृंगारिक काय्य नहीं है, वह श्रृंगार के अनौच्यत्व का निर्वाचित काय्य है। उसमें भावात्मक, देव-भावी योग में और आवार दायपस्क का कौमल भावनाशीलता ही व्यक्त हुई है। राम वर्णकृत भ्रष्टका की वर्णन के आवश्यक हैं और लक्षण विविधतम श्रृंगार की महापरम रेखाक।

इस प्रकार विषयवस्तु, पत्र तथा चरित्र चित्रण, प्रकृति वर्णन और भाव व्यंजना की वृद्धि से पंचवटी में गुफ्ती की विकासशील प्रबंधकला का उत्कर्ष विख्यात उत्कर्ष है।

4.5.6 शक्ति (सन् १९२७ ई.)

इसका प्रकाशन वर्ष सन् १९२७ है। संध्याकाल के प्रतिपादक प्रस्तुत खंडकाय्य की विषयवस्तु पौराणिक देव-दानव संघ्राम है। अत्यन्त् इसमें महाशक्ति द्वारा महिषासुर वध की घटना वर्णित है। ‘शक्ति’ काय्य में गुफ्ती ने चौस्थ षटपदियों के अंतर्गत ‘तुराँ सप्तशाली’ के आक्षण का संशित विश्ववर्ण प्रस्तुत किया है। वे ‘संध्याकाल की कल्ले-देव्यों का मंदे आतंक’ उक्ति को इस काय्य में चरितर करते हैं। विश्वसुः यह शक्ति स्वतंत्र है अर्थात् हुर्या का महाशक्ति-वर्णना जनशक्ति की संगठित इकाई की यह प्रतीक व्यंजना है। कवि का मंद्य है कि आरंभ में असतं पश प्रबल हो जाता है, पर असतं सतं पश ही विनयी होता है। सतं और असतं का ढंग होता रहता है, पर जीवन का लक्षण यही है कि मानव नित्य और जुझे। इसके लिए शक्ति का संचरण अविनय होता है।”

दृ. सतीश गर्ग भी इस काय्य का प्रतीक रूप स्पष्ट करते हैं- “जिस समय कवि ने शक्ति काय्य की रचना की देश की परंपरा का समय तो यह हिंदुस्थान और क्रांति का स्वर मुख्तित रहा। भारत देश को भारत माता की संज्ञा देकर उसमें शक्ति का अधिष्ठान कर दिया गया था। कवि ने केवल हुर्या का स्वतंत्र करने के लिए
इस काव्य की रचना की है या अपनी अथवा देश की दुर्दशा को देखकर प्रतीक रूप में दुर्गा को ऐसी शक्ति के रूप में देखने की चेतना की है जो संपूर्ण शक्ति है, देवताओं की शक्ति का समन्वित रूप है।" इस प्रकार इसमें "दुर्गासमरपति" की मूल कथा का सारांश निरूपित होती है। यह कारण इस रचना में प्रवेश संगमन और शील निरूपण के गुणों का विन्यास नहीं हो सकता।

4.5.6.1 वस्तु-निरूपण

किसी समय देवत्यों के अन्तर्गत से पीड़ित होकर देव-समाज किंकर्त्त्वविवृत्त हो गया। उसकी पराजय पर पराजय होती चली गयी। वानरों के अनाचार से संतुष्ट तेरी देवगण भगवान विष्णु की शरण में जाते हैं इन्दु विष्णु भी उनकी सहायता नहीं कर पाते हैं तब सभी देवों के सम्मिलित तेज से महाशक्ति का जन्म होता है। यथा-

"देवी में दर्शा था सब का तेजः पूर्ण प्रताप,
चरणों में विधि, हाथों में हरि, मुख में हर का आप।
कलरूप-मय था विशाल वह उनका केश-कलाप,
अंगुलि और नखों में धी वसु-विशालकरों की छाप।
माँ के पीन पशोधर युग थे इन्दु-सुधा-परिपूर्ण,
और अग्नि-तेजोमय उनको दुः हे विषम-विच्छुरण।"

चंद्र का रूप-चित्र अंकित करके उन्हें कवि ने देवों से सत्तावास भी भेंट करवा दिए हैं-

"चंद्रपाणि ने चक्र, शंखु ने शूल, काल ने बंद,
राम ने चर्म-कृपाण, रुण ने निगंव दास प्रचंद,
श्वयं पुरुदं ने पच, रथ ने कोपचंद अविवंध,
हविवहन ने शक्ति, वाण ने शर, निपंक, कोवंड,
वश्या ने गम, गरुडः ने देवेन-रूप ध्रुव पंख,
सुरणान ने घंटा, जलनिधि ने दिया उन्हें जय-शंकर।"

तथा शैर-सिन्धु, बासुति, चंद्र, विशवकर्मा, हिमगिरि, बनदेवी, प्रजापति आदि देवी-देवताओं ने भी देवी की रूप सज्जा की। इस रूप सज्जा के पश्चात उस शक्ति ने महिषासुर का मर्दन किया। महिषासुर की माया का और उसके युद्ध का कवि ने औजस्व वर्णन किया है।

शून्य-निघंडु और उनके परिक्रम के साथ भी शक्ति का युद्ध हुआ। देवी ने उनपर भी विनय पाई। दोनों देवत्यों भी युद्ध में मारे गए। महिषासुर वध की कथा से आम चंद्र-मुंड के वध की
कथा की भी गुप्तजी ने इस काव्य में नियोजना की है। वह चारुमंडा बनकर रक्तबीज का भी संहार करती है। इस प्रकार देवगण आतंतकियों से छुटकारा पा सके और उन्हें स्थायी शांति उपलब्ध हुई। कवि ने युध-वर्ण की भावपूर्ण और सजीव बनाया है तथा अमरावती की पुर-देवी का दयनीय चित्र अंकित किया है।

4.5.6.2 पान-तथा चरित

'शक्ति' में विवे पानों के अतिमानवीय कायों का विवरण उपलब्ध होता है, पर उन्हें मानवीय रूप में ही प्रस्तुत किया गया है। इस काव्य में वह साहसी, सिंहासन, लीलामयी, अट्ठाहस करने वाली, अनेक राक्षसों का वध करनेवाली तथा महिषासुर का वध करनेवाली शक्ति के रूप में चित्रित है। उन्होंने महिष का ही नहीं, शुभं और निशुभं का भी संहार किया है। इस प्रसंग में स्वराजुंगिरी उर्मिला चण्ड-मुण्ड के प्रस्ताब पर मंद हास्य विखंडित है। उनकी प्रतिज्ञा है -

“मुझे युध में नीतिया जो देव, दनुज मतनात।
होगा एक वही रिमुखन में मेरा वर विख्यात।”

गुप्तजी की शक्ति मानवी न होकर आधा शक्ति है, इसलिए सारा संसार उसके लिए बच्चों के समान है क्योंकि ‘मूर्तिमती भी सर्व शक्तियाँ केंद्र शक्ति के साथ।’ इसीलिए उन्होंने राक्षसों को मारकर एक तरह से उनका उद्देश्य किया। इसी प्रसंग में कवि ने उन्हें कर्णामयी भी विख्यात हैं। अंत में की गई स्तुति में शक्ति को शक्तिमयी, आभामयी, कोमलमना, तृप्तहस्ता, क्रोध और संतोष की मूर्ति कहा गया है।

4.5.6.3 रस-वर्ण

इस लघु खंडकाव्य में वीर रस का परिपात हुआ है और कवि ने युध-वर्ण को प्रमुखता दी है। इसके आरंभ में शक्ति और अंत में पुर-देवी के शद्भ-चित्र अंकित हुए है। यत्र-तत्र संवारों तथा नाटकीय प्रसंगों के द्वारा वर्णनात्मक बस्तु-शिल्प को चमत्कारपूर्ण बनाया गया है। यह राष्ट्रवादी मनोभावना का काव्य है। शक्ति के महात्म्य-वर्ण के द्वारा कवि ने अपनी भक्ति-भावना अभिव्यक्त की हैं, पर उसी के माध्यम से यह व्यंजना भी हुई है, कि भारतीय वास्तविक विदेशी शासन के प्रतिकूल-पापा से संघटित जनशक्ति के द्वारा ही मृत्यु हो सकती है। परतंत्र देश को कवि ने आवाजान्वित संदेश दिया है। भारतीय जनशक्ति पर भी यह रूपक घटित हो सकता है। यथा--

“एक ही भू-भमिगा से, एक ही दुःखर से, दूर कर देंगी हमारी देश की सब इतिहास।”
इस प्रकार शक्तिति में आरंभित रण-चर्चा है अतः वीर रस का परिपाक है। आरंभ में करूण रस है तो वीर रस का सहायक के रूप में भयानक भी आया है।

4.5.7 सैरंग्री (सन् १५२७ ई.)

‘सैरंग्री’ खड़काव्य की मूल कथा महर्षि व्यास प्रणीत महाभारत के विरास्त पर्व से ली गयी है। तीर्थंकर और कीर्ति के चिर प्रसिद्ध कथानक को लेकर प्रस्तुत काव्य का प्रथम प्रकाशन सन १५२७ ई. में पुस्तकाकार रूप में हुआ, बाद में वहीं ‘जयमहाराज’ महापाण्डु में ‘सैरंग्री’ शीर्षक से व्याख्यात किया गया। अस्तु यह अब स्वतंत्र रचना न होकर जयमहाराज का एक अंग बन गयी है। यह काव्य आकार में लघु है और छप्पय पद्धति में रचा गया है। इसमें तीर्थंकर का निष्कर्षक करित्र अंकित हुआ है। कवि ने इस नामिका प्रधान काव्य में नारीं के उज्ज्वल चरित्र को चित्रित किया है और उसकी मनोमानों को भी अभिव्यक्त किया है।

4.5.7.1 कथावस्तु विवेचन

कथावस्तु की वृत्ति है ‘सैरंग्री’ की कथा महाभारत की कथा पर आधारित है। धूत-प्रसंग में पांडवों के द्वारा की गई प्रतिज्ञा के अनुसार उन्हें बारह वर्ष तक वन में तथा तेरहवाँ वर्ष अजातवास में काटना पड़ा था। अजातवास के समय पांडव छविमनास से विरास्त नगर के राजा के यहाँ रहे। राजा की रानी का नाम सुंदेशण तथा उसके साले का नाम कीर्ति था। तीर्थंकर ने अपना नाम सैरंग्री रखा और वह सुंदेशण की दासी बन गयी थी। सुंदेशण के भवन में रहते हुए एक दिन कीर्ति की दृष्टि प्रभाव हुए और वह उस पर आस्वत हो जाता है। वह उससे उसका परिचय पूछकर प्रेम-प्रस्ताव रखता है। कीर्ति के अनुमोदित प्रस्ताव पर वह संताप हुई। सैरंग्री अपने को पांच गंधर्वों की पत्नी बनाते हुए कीर्ति को संयम का उपदेश देती है। एक दिन जब वह बल्लव (भीम) और गज-युद्ध के चित्र निर्माण में व्यस्त है, तभी सुंदेशण उसके कथा में आ जाती है। वह चित्र की प्रस्ताव करते हुए बल्लव के प्रति उसके मनोमानों को जानना चाहती है। सुंदेशण ने चित्र को देखकर समझा कि सैरंग्री की भीम पर प्रति है। प्रेम की भूमिका तैयार करके वह सैरंग्री को आदेश देती है कि यह चित्र कीर्ति को वह स्वयं में कर आए। सैरंग्री सुंदेशण के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करती, किंतु अंत में उसे सुंदेशण की आज्ञा को मानना ही पड़ता है। उसने दासी के कर्त्तव्य का निर्वाह किया कि -

“पापी जन का पाप उसी का भक्त होगा।/मेरा तो धूत धर्म सहायक रक्षक होगा।”\(^1\)
कामुक कीचक सैरंघी से प्रारंभ करता है, उसे प्रलोभ देता है, भय दिखालाता है और बाद में उसका दाहिना हाथ पकड़ लेता है। इस कृत्य से कुछ होकर सैरंघी उसके हाथ को झटक देती है जिससे कीचक नमीन पर गिर पड़ता है। सैरंघी वहां से भाग कर राजा विराट की न्याय-सम्म भेज जाती है और राजा से अपनी रक्षा की प्रारंभा करती है। विराट इस प्रारंभा की अनुसूची कर देते हैं। कीचक भी वहाँ पहुँचकर सैरंघी पर पद-प्रहार करता है। तब सैरंघी कंक (युधिष्ठिर) के संकेत को समझकर बल्लभ से मिलती है और बल्लभ उसे आश्वासन कर देते हैं। अगले दिन पुनः कीचक द्वारा उससे छेड़खानी किए जाने पर वह उसे रात्रि में नृत्यशाला में आने का निमंत्रण देती है। यथा समय कीचक नृत्यशाला में आता है। वहाँ भीम तथा कीचक का युद्ध होता है और कीचक मारा जाता है। कीचक-वध पर सैरंघी भी सदय हो जाती है।

"कीचक के भी लिए खेल उसको हो आया,
कहाँ जाय वह सदय हदय की ममता माया।"

इस प्रकार महाभारत के विराट-पर्व की इस कथा में दो-तीन स्थलों पर परिवर्तन किया है। महाभारत की सैरंघी कीचक वध पर प्रसन्न दिखलाई गई है किंतु मानव गरिमा के प्रस्तोता गुरुजी की सैरंघी के हदय में इस अवसर पर कीचक के लिए भी ममता जाग जाती है।

३५७३ चरित्र तथा पत्र

यह नविका प्रधान वर्णनात्मक खंडकाय्य है। इसकी नविका सैरंघी और प्रतिनिधिक कीचक है। इस काव्य के पार्श्वों में विशेष कर सैरंघी के चरित्र-चित्रण के लिए कवि ने वैषम्य-पददि, वचन, सवाद या नाटकीय परस्पर्शियों का आश्वासन लिया है। वास्तव में गुरुजी ने सैरंघी में तीर्थनी का चित्रांकन महाभारत के अनुसार बिना किया है। महाभारत में इन्हें पति-परायण, गुरुजी और सती रूप में चित्रित किया गया है। गुरुजी की तीर्थनी भी पतियों में एकनिष्ठ प्रेम रखने वाली है। तीर्थनी की सामस्क मनोवृत्तियों को उद्धारित किया गया है। प्रतिकृत परस्पर्शियों की योगना करके उसके चरित्रवर्ण को भी उत्कर्षित किया गया है। इस तरह सैरंघी तेज, सतीत्व, दृढ़ता, बालपत्र और अन्नय निष्ठा की प्रतीक है। आपत्ति के समय वैष्णवता का परिचय देती है। उनमें कठोर एवं अपमान सहने की क्षमता है।"²³ उसके शीलनिरीक्षण के द्वारा सच्चिदानन्द का आदर्श ब्रजित हुआ है।

इसमें सुदेशन ने सैरंघी के संबंध में अपना वक्तव्य दिया है, पर वह स्वयं दुर्बल नारी है। उसे पर-पर्ख की अपेक्षा अपना स्वार्थ ही प्रय नहीं। भीम का पीरवृत्त ही प्रकट हुआ है। कीचक के चरित्र का स्वयं कवि ने विवरण दिया है। वह कामुक है। उसका वच अन्याय, अन्यायचार और
पाप का क्रय है। सुरेण्य के चरित्र में मानवीय दुर्बलता दिखाई जा सकी है, जब वह आकर्षक परिणाम नहीं पा सकी। सारणा में सैंथ्री एक घटना-प्रधान काव्य कृति है और कवि ने नैतिक जीवनाधारों को व्यक्त करनेवाले उदाहरणों से ही दौड़पी को प्रभावित की है।

4.5.7.3 काव्य-गुण

यह एक वर्णनात्मक खंडकाव्य है। जिसमें करण रस की वर्णना हुई है। करण ही इसका अंग है। शील-निरुपण की चेष्टा भी इसमें प्रत्यक्ष होती है। अभिनयात्मक और विवरणात्मक दोनों पद्धतियों के द्वारा वस्तु-विन्यास और शील-निरुपण किया गया है। वस्तु-विकास के हेतु विभिन्न संबंधों से पर्याप्त सहायता ली गयी है। आत्म-संलायण की योजना भी हुई है। गृहजी ने कथाकस्तु को प्रभुक्त रखते हुए उसके वर्णन में दौड़पी को प्रभावित की है। स्वयं कवि ने भी इस काव्य में कीचक की भर्ती की है। इस प्रकार निर्माणकालिक इस रचना में गृहजी ने चरित्रों को प्रधान बनाने का प्रयास किया है।

4.5.8 बक-संहार (सन १९२१ ई.)

महाभारत के आदि पर्व के एक प्रसंग पर आधारित ‘बक-संहार’ काव्य का प्रकाशन वर्ष सन १९२१ है। इस काव्य की कथा कवि ने सनों में विभाजित न कर १०५ पत्रों में कही है। भीम के द्वारा बक का संहार पांडवों के नालागृह से बच निकलने के पश्चात आत्मिक की रक्षा के लिए किया गया था। ‘बक-संहार’ काव्य का नामकरण प्रभुक्त घटना अवधा कार्य के आधार पर ही हुआ है, पर उसे आधार में रखा गया है। क्योंकि कवि का लक्ष्य कुंती के चरित्र को प्रधानता देना और अपितु तथा आत्मिक के धर्म का आधार रखना है। कुंती की करणा शीलता ही इस काव्य का मुख्य प्रतिपाद्य है।

4.5.8.१ वस्तु-विवेचन

पांडव नालागृह से किसी प्रकार बच निकले और कुंती सहित एकत्र कर नगरपी में एक ब्राह्मण-परिवार के अतिथि हुए। ब्राह्मण के परिवार के सदस्य हैं-स्वयं ब्राह्मण, उसकी पत्नी, कन्या तथा अल्पायु पुत्र। इस नगर का राजा प्रजापीडिक और अन्य आन्दोलन हैं। इसी नगर के निकट बक नामक एक राक्षस रहता है। उसके भोजनार्थ प्रतिदिन नगर से एक गाड़ी आनी तथा दो पैरे भेजे जाते हैं। इतना ही नहीं है यह खाद्यसामग्री लानेवाले व्यक्ति का भी भक्षण कर जाता है। इस प्रकार रान्य-व्यवस्था चल रही थी। पर उक्त ब्राह्मण परिवार अतिशय धमनिभं था और संतोषमय जीवन व्यतीत कर रहा था। एक दिन उस ब्राह्मण-परिवार की बारी आई। उनहें
अपने एक स्वजन को बक का भक्ष्य बनाकर भेजना था। पूरा परिवार शोक-संताम हो उठा।
उनके सम्मुख यह समस्या उपस्थित हुई कि किसकी बलि दी जाए ? ब्राह्मण, ब्राह्मणी और
उनकी कन्या तीनों ही आमबलि देने को सन्नद्ध हुए और अपने-अपने पश में तर्क उपस्थित
करने लगे। अबीर और छोटा ब्राह्मण पुत्र तक आत्म त्याग के लिए उद्वृत्त है।

कुंवी ब्राह्मण-परिवार के इस विवाद और विलाप को सुनकर प्रविष्ट हो जाती है। उनके
मन में परोपकार और कृतज्ञता के भाव उत्पन्न होते हैं। अतः वह उसे आश्वस्त करती है और
उनके बदले में भीम को बक के पास भेजने का प्रस्ताव रखती है। ब्राह्मण इस प्रस्ताव को
काफ़ी आनाकानी के बाद मान लेता है। कुंवी तेजस्वी नारी है। उनके मन में सर्व प्रधान राज्य-
व्यक्ति के प्रति प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई। कवि ने उन्हें के माध्यम से राज्य-धर्म का आख्यान
किया। कुंवी के मातृ-हृदय के अंतर्विंद का चित्रण कवि ने इस प्रकार किया है-

"कर्त्तव्य कुंवी कर चुकी, वह विप्र-विपया हर चुकी,
बासल्य-वश अह उठी विचलित वही।
जो थी शिला-सी निशचता, अब रूढ़ गया उसका गला,
वह देव तक जल-मग्र सी लेटी रही।"тем

पारंपरिक के साथ संलग्न करती हुई वह स्वयं भीम को बक-संहारार्थ भेजने का विश्वास
नहीं करती वरन् वाराण्य के द्वारा ही इसे निर्मित किया है। अंत में भीम का बीरोच सीता
संभाषण रखा गया है। संपूर्ण कथावस्तु नाटकीय विविध संसारों के माध्यम से विकसित की
गई है।

महाभारत और बक-संहार की कथावस्तु लगभग समान ही है। दोनों ही कथाओं में
नारी और ब्राह्मण के आदर्श, तेज, त्याग, अतिथि और आत्मिक कर्त्तव्य, करुणा, व्या,
औदार्य आदि आदर्श भाषाओं की व्यंजना हुई है। किंतु बक-संहार काव्य में कुंवी के आदर्शों का आख्यान
ही कवि का अभिप्रेत है।

4.5.8.2 पात्र तथा चरित्र

इस काव्य में प्रधान पात्र कुंवी का है। गृहजी ने कुंवी के चरित्र को लगभग महाभारत के
समान ही चित्रित करते हुए भी उसे स्वाभाविक मानवता का प्रतीक माना है। बक-संहार प्रसंग
में कुंवी का वातस्तय भाव देखते ही बनता है। वह तेजस्वी नारी है, जिन्होंने राज्य-धर्म का
आदर्श व्यक्त किया है और प्रत्युपकारार्थ पुत्र-बलि के महान त्याग को भी चरितर्थ किया है।
इस प्रकार कवि ने अपने प्रधान पात्र और गीण सभी पात्रों को सातिक, त्यागशील, ममतामय और मानवता के आदर्श के रूप में चित्रित किया है।

2.5.8.3 रस-योजना

इसमें अधिकांशतः करुण रस की सृष्टि हुई है। पर इसमें प्रसंगानुसार बास्तवत्य, प्रेम, उत्साह आदि मनोभावों की व्यंजना की गयी है। इसमें साधारणीकरण की दृष्टि से यह दोष आ गया है कि आधे काव्य में केवल ब्राह्मण-परिवार का चित्रण हुआ है और कुंटी का उसमें कोई स्थान नहीं है। उस अंश में स्वयं ब्राह्मण ही स्वयं-प्रधान पात्र हो गया है। उत्तरार्ध में कुंटी की प्राधान्य प्राप्त हुआ है और ब्राह्मण का व्यक्तित्व क्रमशः महत्वशृंखला होता गया है।”

उसमें अधिकांशतः करुण रस की सृष्टि हुई है। पर इसमें प्रसंगानुसार बास्तवत्य, प्रेम, उत्साह आदि मनोभावों की व्यंजना की गयी है। इसमें साधारणीकरण की दृष्टि से यह दोष आ गया है कि आधे काव्य में केवल ब्राह्मण-परिवार का चित्रण हुआ है और कुंटी का उसमें कोई स्थान नहीं है। उस अंश में स्वयं ब्राह्मण ही स्वयं-प्रधान पात्र हो गया है। उत्तरार्ध में कुंटी की प्राधान्य प्राप्त हुआ है और ब्राह्मण का व्यक्तित्व क्रमशः महत्वशृंखला होता गया है।”
उपयुक्त विवेचन का निष्कर्ष यह है कि बक़–संहार एक आदर्शबादी खंडकाय्य है। इसमें वर्णांग्रम धर्म का तथा परोपकार की महत्ता का सफल निर्माण किया गया है। कवि ने अपने राज्याधिकार की कल्पना प्रस्तुत की है और नैतिक वातावरण की सुषिक्षा की है। इसमें अंतर्देश का सुंदर चित्रण हुआ है और गुप्तजी की प्रबंध कला का विकास भी परिलक्षित होता है। सारांश में ‘बक़–संहार’ में कवि ने भारतवर्षीय संस्कृति की विशेषताओं के निरूपण के साथ कथा और त्याग की म्यान्मार का समन्वित आदर्श उपस्थित किया है।

4.5.9 वन-वैभव (सन् १९२७ ई.)

महर्षि व्यास प्रापित महाभारत के वन पर्व के एक प्रसंग पर आधारित ‘वन-वैभव’ का प्रकाशन सन् १९२७ ई. में हुआ था। यद्यपि इस का प्रकाशन पुस्तकारक स्वतंत्र रूप में हुआ है, तो भी इसे ‘जयभारत’ प्रथम भाग के एक शीर्षक दिया गया है, जान: इसे अब उसका ही अंग माना जाता है। गुप्तजी ने इस काव्य को ‘निर्माण’ में भी समावेश किया है। बहुतांश, ‘वन-वैभव’ लघु खंडकाय्य है, जिसमें कवि ने यह दिखाया है कि जैसा भी कार्य होगा उसका वैसा ही परिणाम होगा अर्थात् ‘जैसी करनी वैसी मरनी’ वाली कहावत यहाँ चरितराध होती है।

4.5.9.1 वस्तु-विवेचन

गुप्तजी ने इसकी कथा का पूर्वांग और उत्तरांग दो खंडों में विभाजित किया है। पूर्वांग में तिरस्कर तथा उत्तरांग में बावन छवि है। प्रथम छवि के मंगलाचरण में कवि ने समावेश में विशिष्ट सीता-हरण प्रसंग की ओर संकेत करते हुए सीता को जानकी स्पर्शी आगार कहा है। यह मंगलाचरण स्तुत्यात्मक न होकर कथा के फल का निर्वेद कर रहा है।

जब पांडव बनवासी बनकर काम्यक वन में अजात वास कर रहे थे, उस समय कीर्तिके ने एक बार विचार किया कि चलो बनवासी पांडवों की चलकर खेत में। सब लोग धुराप्रस्तू के पास आए और उनकी गान कर रहे थे। यह वह वे सब जाने पर नमक छिड़कने के बयां थे बन में सरोवर एवं संपरिजन गए। प्रभावशास्त्र में शकुनि और मित्र कर्ण भी उसके साथ जाते हैं। कीर्तिके के वन-वैभव का आत्मकारी रूप चित्रित किया गया है। पूर्वांग में पांडवों के बनवासी जीवन का विवरण दिया गया है। वे धि-निष्ठ शांत और उद्योगी हैं। उनका जीवन सत्यांग सालिक और सरल है। उनके विनिध वैभव और कढ़रे आश्रम वास पर दर्शाई होकर दृष्टि-निर्देश किया गया है। जब उन्हें कीर्तिके के आगमन की सूचना मिली तब उनके मन में अंक्र फैलाकर के विचार आए। कवि ने उनका विस्तार पूर्वक निरूपण किया है। इस प्रसंग में दीपवी का चरित्र विशेष
रूप से स्पष्ट हुआ है। वह अपने अपमानों को भूल नहीं पाती है। युधिष्ठिर खिन्न पत्नी और कुस्म भाइयों को प्रकृतिस्थ करते हैं। वे चाहते हैं कि अबसर आने के पूर्व रोश को प्रकट न किया जाए, क्योंकि वह व्यभिचारित होगा। वे वनवास की अवधि में प्रशांत रहना ही उपयोगी समझते हैं। इसके पश्चात अरुण और भीम के मनोभावों का चित्रण है।

इसके उत्तरार्ध में कोई ने खुद विवाह का लीप्य दिया गया है। गंगवी का राजा

चित्रण उस वन में सहायकों के साथ जल कीड़ा कर रहा था। भामर्षुकुराज दुर्योधन

उसी तड़ाग में जल कीड़ा करने पहुँच गया। रोकने पर भी जब वे न रुके तब गंधर्वराज चित्रण

से उनका युद्ध हुआ। युद्ध में दुर्योधन चित्रण रथ से हारकर गंगवी दुर्योधन बांध लिया गया। इसकी

खबर पांडवों के पास पहुँची। युधिष्ठिर के अलावा सभी को क्षणिक प्रसन्नता हुई। युधिष्ठिर

तुरंत कोई ने उनके के लिए सर्वेश्व हुए। द्रौपदी और भीम के प्रतिद्वंद्व भाव से प्रेरित विरोध

को उन्होंने अस्वीकृत किया और शरणार्पण-रक्षा का उच्चारण-पालन करने के लिए उन्हें

समझाया। युधिष्ठिर ने अपने शुद्धों को भी बंधन-मुक्त करवाने के लिए अरुण को भेजा।

अरुण ने अपने मित्र और पांडवों के हितीय चित्रण के साथ युधिष्ठिर करने के लिए उन्हें

समझाया। युधिष्ठिर ने अपने मित्र और पांडवों के हितीय चित्रण के साथ युधिष्ठिर की उच्चारण-पालन करने के लिए उन्हें भेजा। चित्रण को हारकर और कोई को साथ लेकर अरुण युधिष्ठिर के पास आए। युधिष्ठिर और दुर्योधन

की इस भेंट में दुर्योधन का अभिमान महत्त्व हो गया और उसे लजित होना पड़ा। कोई को

स्वयं नीचा देखना पड़ा और शुग्र भी उपकृत होना पड़ा।

8.5.9.2 शील-निरुपण

गुरुजी ने ‘बक-संहार’ के समान ‘बक-वेभ्व’ में भी युधिष्ठिर का चित्र सामान्यत: निरूपण

महाभारत के अनुसार ही चित्रित किया है। जिस चरित्रोत्तर के द्वारा वन तपोवन हो सकता है,

उसका प्रत्यक्षीकरण युधिष्ठिर की मामलता के द्वारा किया गया है। उनका शील उच्चारित,

भिन्नभिन्न और सत्ता प्रकृत है। वर्तमान के द्वारा विचारित किया जाने पर भी वे सत्ता के

विचारित नहीं हुए, उन्हें उन्होंने प्रेमों को विश्वास देते हैं। गंगवी दुर्योधन दुर्योधन को बांधे जाने की

सूचना मिलते ही अपने भाइयों से दुर्योधन की रक्षा करने का निर्देश देते हैं। इस संदर्भ में

युधिष्ठिर का कथन है–

“कोई ने जो अन्तःप्रारूप किए हैं हम पर बाराबर

नहीं और पर इसका भार।

कृपा की अन्यायी हूँ, हमारे फिर भी भाई हैं।

255
नहाँ तक है आपका की ऑच-वहाँ तक वे सी हैं, हम पाँच।
किन्तु यदि करे हृदरा जौच, निगम तो हमें एक सी पाँच।’’

यहाँ उनके चरित्र की दयालुता और शामिलता ही प्रकट होती है। विपन्न जीवन में भी उनकी आस्था अंकित रही, नैनिकता विचित्रित नहीं हुई और शतु की सहायता करने में भी वे पीछे नहीं रहे। भौतिक उत्तरणदेश पाप के प्रति उन्हें लोभ नहीं होता, वरन् शील-विकास के सदाचार को ही वे साधन मानते हैं। कवि ने मानवता के सांस्कृतिक आदर्श के रूप में उनका चित्रण किया है। वे परदो-खातार और त्यागशील व्यक्ति है। उन्होंने शतु के सराहनायत होने पर हिन्द से भी विनाश करके अपने शात्र-भर्ति का निर्वाह किया है। उनके चरित्र में नैनिकता का समुदाय कि निदिशित हुआ है।

दुर्गीय भौतिक प्रतिनायक है। उसने युधिष्ठिर को अपने भौतिक वैभव से लजित करने का प्रयास किया है, पर अस्ति प्रवृति के कारण कुलकार क न हो सका। परिस्थिति-वैभव में कारण स्वयं उसे ही अपने पर पर वैभव से लजित ही नहीं, लजित ही हो गया। दुर्गीय ने सुप्रोपण बनाने की चेष्टा की है। ‘वन-वैभव’ में उन्हें के कारण उसे चित्रकेरण का बंदी बनाना पड़ा है। इससे यह सिद्ध होता है वह स्वभाव में उन्हें आरा नहीं है नितना उसे महाभारत में विख्यात गया है। चित्र-सेन के रूप में भौतिक मिलने पर वह युधिष्ठिर के सामने नतमस्तक होता है, इससे उनके आई पर चीत लगती है। इस प्रकार महाभारत के समान ही ‘वन-वैभव’ का दुर्गीय भी महत्वकाशी, राजनीतिज, वीर, अन्यायी और मनमानी करने वाला व्यक्ति है।

त्रिपुरी और शीतल प्रतिनिधित्व की भावना से ग्रस्त हैं। उनके मन में कीर्ति के प्रति धारा की भावना भरी हुई है। आत्मसंघ दुर्गीय के कारण युधिष्ठिर के साथ उनका वाद-विवाद होता है। चित्रकथा और अजुन गौर पात है। उन्होंने इस काव्य की प्रमुख घटना को प्रतिक निर्माण है, पर कवि ने उनके वीरत्व का प्रभाव नहीं है, वरन् युधिष्ठिर की आदर्श मानवता को भी चरितार्थ करने का प्रयास किया है। कवि ने चित्रकथा और अजुन के उत्तर वीरत्व को भी प्रकट किया है।

4.5.9.3 भाव-व्यंजना

इस काव्य में करण की भावना सवृपर है। डा. उमाकांत के शब्दों में- ‘‘वन-वैभव’ में रस का आभास तो नहीं है, किंतु है वह बहुत विरल। वैसे आवाज करण का अवतरण है पर हुवन को उद्देशित करने में समय स्पतित मिलती के ही हैं। पृष्ठभंडार में करण के एक-दो अपछु उत्तरार्थ है, उत्तरार्थ में वीर रस का अभ्यस्त है।’’51 वरलासल यह वीर रस का काव्य नहीं है। इसमें
विवेक: शांत रस की व्यंजना की गई है। कवि ने कोमल भावों को प्रभुक्ता दी है और उन्हें मुख्य भाव-धारा का सहयोगी बनाया है। इस काव्य में एक राजनीतिक वृद्धिकोण भी प्रकट हुआ है। भाई-भाई में श्रद्धा होते हुए भी यदि कोई दुसरी शक्ति आक्रमण करे तो पापरिक वैर-भाव को भूलकर उन्हें एक ही जाना चाहिए। विशेष कर कवि की सांन्यूक्त रायभावना ही इस काव्य में मुख्य: अभिव्यक्ति हुई है और चारित्रिक आवश्यक प्राणां नीति-निष्ठाएं निरूपित हुई है।”

4.5.10 विकट-भट (सन १९२८ ई.)

‘विकट भट’ का रचना काल सन १९२५ है, यथापि इसका पुस्तकाकार प्रकाशन सन १९२८ ई. में हुआ। वस्तुतः १४ मई, १९२७ के पत्र में महाबीर प्रसाद ढिबेदी जी ने गुप्तनी को बुद्धिलंघन और राजपूताने की घटनाओं पर काव्य रचना करने का आदेश दिया था। यह काव्य उसी का परिणाम था।”

4.5.10.1 वस्तु विवेचन

‘विकट भट’ की कथा अल्पांक आर्कर्ष एवं हदव भावक है। कथा का विवाक सहम स्वभाविक है और कथाक का अनिवार्य तत्व रोचकता आर्कर्ष विवाह करता है। जोधपुर-नरेश विजयसिंह ने एक विद सहस्यो पोकरण बाले सरदार देवी सिंह से प्रश्न किया ‘यदि कोई रुढ़ जाए मुझसे तो क्या करे ?’ देवी सिंह ने सुनकर कहा कि कोई व्यक्ति ऐसा करेगा ही नहीं सकता, फिर भी यदि ऐसा कर ही बेठेगा तो वह जीवन से हाथ घों और गरे मुझसे।” नरेश ने पूछा कि ‘यदि तुम रुढ़ जाओ तो बताओ क्या करोगे ?’ देवी सिंह बार-बार यहीं कहते रहे कि ऐसा कदापि संभव नहीं है, किंतु बार-बार यही प्रश्न किये जाने पर वह कुछ होकर बोले ‘पृथ्वीनाथ, यदि मैं रुढ़ जाऊ तो जोधपुर की तो बात ही क्या मैं नयकोटी मात्रत्व को उलट दूं।’ इस दृष्टि के अन्तर्क देवसिंह को दूसरे ही बिन मरना पड़ा। विजयसिंह देवसिंह के पुत्र सबलसिंह
पर आक्रमण करता है और उस रूप में सबलसिंह सहित अनेक योद्धा वीरगति प्राप्त करते हैं।

इस घटना के अन्तर्गत बारह वर्षीय सवाईसिंह, जो देवीसिंह का पीत था, पोकरण का सामंत बना। उसकी विधाय माता ने अपने शोक को रोककर राजपुत्तों की निराली आन-बान की तथा बौद्ध वंश की उसे शिखा दी। सवाई सिंह अपने पितामह तथा पिता के प्रति किए गए उस अनुभव व्यवहार का उचित बदला लेने के लिए जोधपुर जाने के लिए कदमबद्ध हो जाता है।

उधर जोधपुर-नरेश पोकरण को जीत लेने के पश्चात एक दिन आहुर के सरदार जैतसिंह से पूछते हैं कि क्या कोई ऐसा तीर है जहाँ वह डंका बनाकर चढ़ाई कर सके? जैतसिंह विश्वसनीय यही उत्तर देते हैं कि ऐसा कोई स्थान नहीं है, जिस पर महाराज को सहज अधिकार सुलभ न हो। यह यदि आहुर पर भी आक्रमण करते तो उन्हें मृत्यु की खानी पड़ सकती है। विजयसिंह आहुर पर आक्रमण करते हैं परंतु उसे जीत नहीं पाते। वह जैतसिंह से यह कहता भेजते हैं- “इस उन्हें परहेज़ में आने वें, रोके नहीं।” घाकुर जैतसिंह यह स्वीकार कर लेते हैं और वह भ्रम के रूप में विजयसिंह के साथ जोधपुर लौटते हैं। यहाँ जैतसिंह को रात में सोते हुए मार दिया जाता है। इस प्रकार राजा विजयसिंह अपने अहंकार में आकर देवीसिंह तथा जैतसिंह नामक दो परम मित्रों को उनके कट-सत्य बोलने के कारण मीत के पास उतरता देता है।

बालक सवाईसिंह को विजयसिंह के सामने नाया जाता है। विजयसिंह उससे प्रश्न करता है-“बालक, जिस कटरी की पतली में जोधपुर रहता था वह अब भी तुम्हारे पास है या नहीं?” सवाईसिंह निःशंक होकर उत्तर देते हैं कि पितामह तथा पिता की वह धरोहर उसके पास थावत सुरक्षित है। बालक का यह वंशीयत उत्तर जोधपुर नरेश को परास्त कर देता है। वह उस बिक्रेता भट को छाती से लग लेते हैं और उसको अपना सामंत बनाता है। इस प्रकार सवाईसिंह गुप्ते का बिक्रेता भट है जिसके नाम पर इस काव्य को नाम दिया गया है।

४५.०२ पात्र-परिचय

गुप्ते ने पात्रों को अभिभावक भावनाओं का प्रतीक बनाया है। इस लघु काव्य में राजा विजयसिंह, सामंत देवीसिंह, सबलसिंह, शत्रयुक्त राजा सवाईसिंह आदि पात्र हैं। सवाईसिंह के पुर्वज वीर, निभायक और अभिमानी योद्धा है। वे क्षा-तेज के प्रदीप नक्षत्र हैं, पर किसी महत्त्वपूर्ण उद्देश्य से वह परिचालित नहीं होते। जोधपुर के राजा विजयसिंह का चारिण्य निम्न कोटि का है। परंतु अंत में उसकी इच्छा शुद्धि की गयी है। सवाईसिंह देवीसिंह और सबलसिंह का यथार्थ उत्तराधिकारी है। विनम्रता और बौद्धिक का पैतृक निधियाँ उसे जन्मना प्राप्त है, और बारह वर्ष
का होते-होते ही वह स्वयं अकेला भी वह देखने के लिए जोधपुर-नरेश के पास जाने के लिए कठिन हो जाता है कि उस कृत्रिम और कृत करना के सींग-पूँछ है या नहीं, क्योंकि “पशुओं से भी नीच तथा मूढ़ मानता हूँ में उसे!” सवाईसिंह की बीमा माता जानती है कि जोधपुर जाने में उसके पुत्र का क्षेत्र नहीं है, तथापि वह अपने पुत्र की मानहानि देखने की अपेक्षा प्राणहानि देखना श्रेयस्कर समझती है। सवाईसिंह जोधपुर-दरबार में ऐसे प्रवेश करता है जैसे निर्मय मृणेन्द्र नये वन में प्रविष्ट होता है। जोधपुर नरेश को लगता है मानो देवीसिंह ही नया रूप लेकर वहाँ आ गया है। नरेश उसे बताते हैं कि उन्होंने उसे वह जानने के लिए जोधपुर बुलाया है कि देवीसिंह की जिस कटली की पतली में जोधपुर रहा करता था वह अब भी उस बालक के पास है या नहीं ? सवाईसिंह का उत्तर है-

“होता जो न जोधपुर पतली में उसकी,/कहिए तो कैसे वह प्राम होता आपको।”

सरलता नरेश तुरंत संस्कासन छोड़, उठकर उस शत्रु-कुंभा को छाती से लगाकर उस विकट भट का स्नेहाभिषेक कर देते हैं-

“मैने बुरा काम किया, भूल हुई मुझसे।/किंतु देवीसिंह और जैतसिंह दोनों ही
मर के भी जीवित हैं, देखो, इस बच्चे को/और आशीर्वाद दो कि यह सुख से निये।”

४.५.१०.३ भाव-व्यंजना

इस रचना में सप्रसंग प्रेम, घृणा, शोक, क्रोध आदि मनोभावों की व्यंजना हुई है। पर व्यास सर्वत्र वीरोदसह ही है। इसमें मन्दिरुपोभक्त राजपूतों की विलक्षण जातीय विशेषताओं का बीरत्व प्रदर्शन चित्रण किया गया है। इस काव्य में बीर रस का संचार हुआ है। करुण तथा भीमसह रस भी अंग रस बनकर आए हैं। ज्ञ. उमाकांत का मंत्र है- “प्रस्तुत काव्य में दो रसों का मणि कांच रसंयोग है एक बीर रस और दूसरा करुण। यद्यपि विकट भट बीर वर्ष्ण उक्तियों से परिपूर्ण है फिर भी बीर की अपेक्षा करुण का परिपक्व अधिक सुंदर हुआ है, वह अधिक प्रभावक है-क्योंकि बीरता का कथन अधिक है, अभिव्यंजना कम। इसमें विपरीत करुण का चित्रण मात्र में कम होने पर भी उद्योगजनक अतिव बद्यावर्धक है।” ३९ इस काव्य में राजपूती आन दर्शन और अभिमान का अच्छा वर्णन हुआ है। राष्ट्रीय सौराष्ट्रु शोध को उल्लेखित करना इसका उद्देश्य है।
4.5.91 यशोधरा (सन् १९३२ ई.)

यशोधरा का प्रकाशन साकेत के लगभग एक वर्ष पश्चात उन १९३२ ई. में हुआ था। इसमें भगवान गौतम बुद्ध और उनके पत्नी यशोधरा की जीवन तथा अंतिम गयी है। पति-पत्नियों का यशोधरा के हार्दिक दुःख की व्यंजना तथा देवधारियों की स्थापना इस काव्य का मुख्य प्रतिपाद है। इस खंड का लेखन के बारे में अपने विचार प्रकट करते हुए मुक्तजी ने अपने लिखा है- "भाई सियाराम जरण .... भेदी शक्ति पर विचार किए बिना ही मुसलमानों के लिए इस काव्य के प्रस्तावात्मक समाप्ति की रचना करते हुए, जिसमें कविता, गीत, नाटक और लघु संगीत में सम्मिलित है, परंतु सच पूर्ण जाना तो यह काव्य भी अत्यधिक दिलवाली श्रेणी की किहाड़ी के रूप में निर्मित हुआ है, क्योंकि जिस तरह उमिनामा विचारक उपेक्षा की पूर्ति करने के लिए 'साकेत का निर्माण हुआ था, उसी तरह गौतम बुद्ध चिर उपेक्षित नाटक अथवा यशोधरा का पावन जीवन-ग्रंथ क्रिया की झोंक अंकित करने के लिए इस काव्य का निर्माण किया। गौतम बुद्ध पर तो पाल, प्रकृति, हिंदी आदि कई भाषाओं में बहुत कुछ लिखा गया था, परंतु यशोधरा के प्रति किसी भी कवि ने अपने दो ओळखों को बदल किया था। इसी अभाव की पूर्ति करते हुए कवि ने इस काव्य का निर्माण किया है।"55 यशोधरा' का उद्देश्य है पति पत्नियों का सहायता के हार्दिक दुःख की अभिव्यंजना तथा बोधित सिद्धांतों की स्थापना। एक वर्ष पूर्व कवि ने अपने उपेक्षिता उमिनामा को वांछित प्रस्ताव की थी। बहुत से प्रेमिक यशोधरा के लिए कवि ने उसी के समान विस्मृत और शोक पूर्ण स्थितिप्रभाव पर अपने निर्णय फूटाने को नजर आने वाली यशोधरा की जीवन वृत्त कविता बनाया किया है।109

4.5.91.1 वर्तु-विवेचन

"यशोधरा' की कथा का पूर्ण विचारविश्व एवं इतिहास प्रसिद्ध है तथा उपर्युक्त कवि की अपनी उर्वर कल्पना की सूचना है। अधिकांश प्रसंगोद्घाटीय पाठक कल्पना और स्थान-योजना गुणजी की अपनी सृष्टि है। बुद्ध-जीवन का सांस्कृतिक पृष्ठाघार इसकी भूमिका है और नारी सम्मान का आधुनिक भाव इसके मेल-मिल है।

यशोधरा का कथानक अत्यंत संक्षिप्त है। कथानक की संक्षिप्तता के राहते हुए भी उसमें आवश्यक धर्म और अवसान है। बालक गौतम के रूप में भगवान आभार धारक के विरुद्ध की शुद्धिघरुल्ल घर पर अतर्कित होते हैं। उन्हें जन्म देकर ही उनकी जन्मी मायावती अपनी जीवन—
लीला समाप्त कर देती है। शुक्रोधन की दूसरी रानी महाप्रजनवती बालक का जानल-पानल करती है। गौतम में बाल्यकाल से ही बीतराग के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। पिता पुत्र को संसारी बनाने के लिए उसका विवाह देवदह की जागजकुमारी यशोधरा या गोपा के साथ कर देते हैं। किंतु एक व्रृद्ध को देखकर गौतम के मन में अनेक प्रश्न उठ खड़े होते हैं— ‘याबन पुष्प आया, क्या ऐसी ही मेरी यशोधरा? सूखा जायगा मेरा उपवन, जो है आज नहीं?’ हृदय के आरंभ में संसार की लक्षणभूमि को देखकर सिद्धार्थ के मन में उठने वाली विरक्ति की भावना बर्तन है।

इस संसार को दुःख मय समझकर सिद्धार्थ दुःख निवारण के लिए कटिबद्ध होते हैं और मुक्ति-लाभ के निमित्त अपनी पत्नी यशोधरा और पुत्र राहुल को सोता हुआ छोड़कर अर्ध रात्रि के समय वन के लिए प्रस्थान करते हैं। प्रातःकाल जब सिद्धार्थ को राज-प्रसाद में नहीं देखा जाता है तो यशोधरा, महाप्रजनवती तथा नंद अपने-अपने शोक का आयाम करते हैं। ‘यशोधरा’, ‘नंद’, ‘महाप्रजनवती’, ‘शुक्रोधन’ तथा ‘पुष्पन’ शरीरकों के अंतर्गत सिद्धार्थ के महाभिनिधात्मण से उपनन विविध पाठों की मानसिक प्रतिक्रियाएँ अभिव्यक्त की गयी हैं। यहाँ पर यशोधरा के चरित्र की वृद्धि का पता लगता है। यशोधरा-यशोधरा संवाद में यशोधरा ने आज्ञा किया है कि उसके पति की खोज का कोई प्रबंध न किया जाए। ‘छदक’ शरीरक वो प्रीतियों में गौतम के त्याग के तथा यशोधरा के साथी के तथा तापसी वेश धारण करने के कथा-बुध्दों को अभिव्यक्त किया गया है। यशोधरा को दुःख इस बात का है, कि वे उससे बिना पूछे गये हैं। वह समझती है कि मुझसे बिना पूछे जाने का अर्थ यह है कि वे मुझे निर्भर समझते थे, उन्हें कहते ह विश्वास था कि में उन्हें शुष्क कार्य के लिए गमन करने से रोक लूंगी, अतः वे मुझ पर संदेह करते थे। सिद्धार्थ की सारी छदक सिद्धार्थ के साथ गया हुआ था। वह ताज़ा हृदय, शुक्रोधन नगरवासियों आदि को बताता है कि जागजकुमार ने सन्यास प्राप्त कर लिया है। यह समाचार सुनकर यशोधरा भी तापसी वेश धारण करती है और भावातिरेक की स्थिति में अपने दीर्घ केवल काट जाती है। यहाँ तक कथा का आरंभ माना जा सकता है।

इसके उपरांत यशोधरा के विश्व की कथा है। यशोधरा यहाँ दो रूपों में उतरारी गयी है—विरहिणी रूप में और जननी रूप में। ‘यशोधरा’ शरीरक के आत्मोदुर्गरों में नायिका का विश्व-वेदना व्यज्ञ लेता है। ‘राहुल जननी’ के प्रेरणा, मुक्तक और संवाद नायिका के साबरम्य और आह्त प्रेम की सम्मिलित अभिव्यक्ति करते हैं। कवि ने ‘यशोधरा’ और ‘राहुल जननी’ को और यसोधरा-दुःख निवारण की है और इसके द्वारा उसके सिद्धांत, माता और पुजारुधु के रूपों को अभिव्यक्त किया है। इन शरीरकों को बार-बार दोहराया जाना यह सुनित करता है कि नायिका का व्यक्तित्व विकसित हो रहा है और राहुल की बाल्यवास्त्र विश्वासवस्था में परिणत
हो रही है। यशोधरा का शील प्रेम-साधना के दूरार उज्ज्वल हो रहा है और उसके चरित्र में वास्तविक प्रशंसा का ऋणिक प्रवेश आरंभ हुआ है। ‘संघान’ नामक शीर्षक में गीतम बुद्ध की खोज के विषय में बताया गया है। यहाँ कथा का भाग्य समाप्त हो जाता है।

अपनी प्रेम साधना से यशोधरा के नृत्य-धर्म का आवर्त इतना पुंष हो जाता है पति के वियोग में वारण अवस्था में है। वर्षों की तपस्या और कष्ट साधना के परशार गीतम अपना प्राप्त पा लेते हैं। सिद्धियाँ उनके पथों पर प्रणत हो जाती हैं। तथागत के तप तथा त्याग सफल होने पर कपिलवस्तु पदार्थ हैं। सात नगर गीतम के आगमन की सूचना पाकर हर्ष-विह्रवल है किंतु यशोधरा शांत और गंभीर है। वह सोचती है कि उसके स्वामी उसे जो हाँ छोड़कर गए हैं, वह वहीं रहने और उसके स्वामी उससे वहीं आकर मिलेंगे। ‘यशोधरा’ अंश में व्यस्त हुआ है कि बुद्धदेव राजभवन में विश्वसन पधारे हैं और विश्वमित्र की परीक्षा का समय सन्निकट आ रहा है। ‘बुद्धदेव’ प्रसंग में इस प्रेमकथा का उपसंहार है, जिसमें गीतम ने अपनी सफलता का श्रेय अपनी पत्नी को देते हुए कहा है कि उसके प्रेम ने ही प्रतिपक्षों से उनकी सदृश राह की है।

शुद्धोधन के समझाने पर भी वह मानिनि पर छोड़कर नहीं जाती। अंत में महाराजा बुद्ध ही आकर उसे मिलते हैं और कहते हैं -

“मानिनि, मान तजो लो, रही तुम्हारी बान।
मानिनि, आया स्वयं दूरार पर यह तब तत्त्वांन।” 102

तथागत को आया हुआ देखकर यशोधरा की खुशी का ठीकाना नहीं रहा और महारानी तेन्द्री नारी राहुल को बुद्ध की शरण में भेज देती है और स्वयं भी पति के धर्म में दीक्षित हो जाती है। यहाँ पर प्रस्तुत काव्य का पर्यवसान हो जाता है।

२.५.१३.२ शील-निरुपण

यशोधरा चरित्र-प्रधान खंडकाव्य है। वस्तुतः इस काव्य की रचना ही उपेक्षिता यशोधरा के चरित्र को ऊंचा उठाने के लिए हुई है। यशोधरा के अतिरिक्त दो पात्रों के चरित्र कुछ उत्पर पाये हैं और वे हैं- राहुल और गीतम। काव्य के अन्य पात्र है- शुद्धोधन, महाप्राणवती, नंद, छंदक, गंगा, गीतमी, चित्रा और विचित्रा। किंतु उनके चरित्रों पर प्रकाश डालने का काव्य ने कोई प्रयास नहीं किया है ये सभी पात्र औपचारिक है और वातावरण निर्माण में सहायक बन कर आए हैं। इसीलिए यहाँ पर केवल सिद्धार्थ, राहुल और यशोधरा के चरित्र पर ही प्रकाश डाला जाएगा।

262
सिद्धार्थ (गौतम) कपिलवस्तु के महाराज शुक्लोधन के पुत्र हैं। गौतम काव्य के आरंभ और अंत में उपस्थित हुए हैं। उनके महाभिनिष्क्रमण के पूर्ब का चरित्र आरंभ में स्कार गया है और सिद्धि प्राप्ति के पश्चात सम्बन्ध-प्रचार का कार्य अंत में निर्मित हुआ है। गौतम के चरित्र में कोई नवीनता नहीं है। वास्तव में गौतम के चरित्र पर प्रकाश डालना कवि का उद्देश्य नहीं था, अतः उसमें बड़ी कोई नूतन उद्देश्य नहीं था तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इस संदर्भ में अनुप शर्मा का मत क्रियाव्य से- “भगवान वृद्ध के चरित्र में यह विशेषता है कि वह उत्तरार्थ से उन्मत्त होता चला गया है। हम उनके चरित्र में मनुष्य की आत्मा का पूर्ण विकास पाते हैं।”

सिद्धार्थ को राज्य-सुख भोग के प्रचुर साधन थे। परंतु एक विन एक रोगी को, दूसरे विन वृद्ध को और तीसरे विन एक मृतक को देखकर म्याप्जन होती है, और उन्हींने संकल्प किया- “खोजूँगृह में उसको, जिसका बिना यहाँ सब तीता है।” वह अपना ‘सिद्धार्थ’ नाम सार्थक करने के लिए एक रात की पत्नी यशोधरा और नवजात शिशु राहुल को सोता छोड़कर घर से निकल जाते हैं। अमृत-तत्व के संधारण में गौतम वर्षा तक कठोर तपस्या करते हैं। उन्हें विवेकुद्दसी प्राप्त होती है। बुद्धिमत्ता धर्मचक्र का प्रवर्तन कर दूसरों के लिए भी मुक्ति-मार्ग सुलभ कर देते हैं। वह भिक्षुक वेश में कपिलवस्तु पर्यायत में। यशोधरा उनके स्वागतार्थ नहीं जा पाती। भगवान वृद्ध स्त्रियाँ भक्त के पास आते हैं और कहते हैं- 

“माना, दूरलं ही था गौतम छिपकर गया निवास, शामा करो सिद्धार्थ शाक्य की निर्भूषता प्रिय जान।”

गौतम को अपनी जन्मभूमि और अपनी वंश रंगरंग के प्रति भी विशेष प्रेम है। उनके चरित्र की अन्य विशेषता यह है कि वे नारी के गुणों के प्रशंसक है। नारी की महत्ता स्वीकार करते हुए कहते हैं- 

“दीन न हो गोपे सुनो, दीन नहीं नारी कभी, /भूत-दया-मूर्ति वह मन से, शरीर से, /श्री जुआ में शुधा से में विशेष जब,/मुझको बचाया मातुजाति ने ही खोए से।”

• राहुल

गौतम और यशोधरा का पुत्र है। राहुल के जन्म का उत्सव भी पूरा नहीं हो पाता कि गौतम सिद्धि-हेतु गृह त्याग कर देते हैं। राहुल के लालन-पालन का भार वियोगिनी यशोधरा पर आ पड़ता है। यशोधरा स्वयं रोती रहकर भी सूत को हंसाना चाहती है। वह उसे किलकता देखना चाहती है। राहुल अपनी बाल-लीलाओं अपनी माता को रिखाता है, कभी रुढ़ जाता है।
बड़ा होने पर वह पिता के विषय में अनेक प्रश्न करता है। यशोधरा पुत्र की शंकाओं का उचित समाधान भी करती है, वह पिता की प्रतिकृति और माता की छाया है। राहुल पिता के प्रति अविश्वास है और माता से स्वभावत प्रभावित होता है। वह पिता के पास जाकर जानना चाहता है कि मुक्ति क्या है और वह कैसे प्राप्त होगी? वह पिता के पास जाकर यह भी पूछ आना चाहता है कि मुक्ति बड़ी या मेरी माता? और माँ जब राहुल को पिता का अनुगमी बना देती है तो राहुल यह कहकर उसी पथ का पथिक बन जाता है- 

“ताते, पैदा दाय दो, निज शील सिखलाओ मुझे, प्रणां हूं मैं इन पत्रों में, मार्ग विख्लाओ मुझे, अस्तु से सत् में, लिंग में व्यक्ति में लाओ मुझे, मृत्यु से तुम अमृत में हे पुरुष, पारहाचा मुझे।”

• यशोधरा (गोपा)

इस काव्य में गुप्ती ने परिपूर्णता यशोधरा का चरित्र-प्रियण करते हुए ही-सिखलाओं का खूंटन एवं बैठन सिखलाओं का मंडन किया है, क्योंकि इसमें गोपा बुद्ध को भी ब्रह्म का अवतार मानकर गोपा के दामत्व प्रेम का पर्यवेक्षन भवानत भविष्य में किया गया है।”

dूसरे कवि का मत भी प्रस्तुत है- “यशोधरा की जीवन-साधना धूम पूर्ण है। वह पूर्णता साधक इस प्रकार समस्त पढ़ती है-माता के रूप में उसने राहुल-जननी का कर्तव्य-पालन किया, पति के रूप में पति-विवोध का संताप भोगा, गुरुपिठा के रूप में निवृत्ति मार्ग की विशंसा की और अखंड नारी के रूप में नवनयनीत बोलकर भी वह आत्मनीत धूम पूर्ण रही। वह राहुल के लिए गाती है, गोपा के लिए रोती है, ‘संसार बेतु तीर्थ बार स्वर्ग मेरे हम’ की कामना करती है तथा स्वाभाविक के कारण पति का प्रत्यागमन सुनकर भी वह विदा न लेनेवाले का स्वागत करने नहीं जाती। वह देवी और वर्ष, पति-पति और मातृत्व तथा प्रेम और कर्त्तव्य की समस्ति है।”

dूसरे कवि की आत्माभिमान, त्याग, साहस, सहिष्णुता आदि गुणों की भव्यत्तिक स्वाभाविक रूप से हुई है। वह भारतीय नारी-जीवन के आदर्श की प्रतिमा है। उसे कवि ने अनुरागिनी, मानवतावी, जननी और कुलदृढ़ के रूप में प्रस्तुत किया है। यशोधरा का चरित्र-प्रियण आधुनिक नारी भावना के अनुरूप हुआ है।”

वस्तुतः यशोधरा के चरित्र द्वारा नारी की गरिमा को व्यक्त करना ही कवि का उद्देश्य रहा है।
इस काव्य में यशोधरा के चरित्र के जिन रूपों पर प्रकाश डाला गया है, वे हैं उसके-पत्नी, अनुरागिनी, जन्मी, माता और विराहिणी रूप। सर्वप्रथम उसके पत्नी रूप को ही देखा जाए। यशोधरा वेदवह के महाराज बंदपाणी की पुत्री थी। परिणाम के लिए आयोजित महोत्सव में कपिलवसु के राजकुमार गौतम यशोधरा को ही सभी सुंदरी बालाओं में सर्वश्रेष्ठ मानकर पत्नी रूप में उसका वरण करते हैं। सभी उसके रूप की सराहना करते हैं, सभी उसके सीभाव का बखान करते हैं। लेकिन यशोधरा का यह सुख-संसार चिरस्थापी नहीं रहता। उसके पति वीरराज हो जाते हैं और यही से यशोधरा के अबला-जीवन की कहानी आरंभ होती है-

"अबला जीवन, हाय तुम्हारी यही कहानी/अँचल में है दूध और आँखों में पानी।"

अनुरागिनी के रूप में यशोधरा का चरित्र निवर उठा है। इस रूप में उसके चरित्र की विशेषता यह है कि वह अनुरागिनी होते हुए भी माता है। वह अपने पति से जितना अनुराग रखती है, उतना ही माता भी करती है। अपने पति पर यशोधरा को समृद्धित गर्व है। गौतम सिंह इसके समय रहते गये, परंतु उन्होंने उसे यह अवसर दिया ही नहीं कि वह सिंह-हेतु जाते समय उन्हें गाकर बिदा करती और गोरे पाकर यह भार ढेलती। किंतु गौतम उसे लजाकर चले गये।

"सिंह-हेतु स्वामी गये, यह गोरे की बात,
पर चोरी-चोरी मगे, यही बड़ा व्याधात।"

वह उपालंध नहीं देना चाहती बल्कि यही कामना करती है कि वे संसार के दुःख से दुःखी न हो और सिंह प्राप्त कर अवश्य जोटे।

"जार्य सिंह वां वे सुख से, दुःखी न हो इस जन के दुख से।"

विवेचन काव्य में यशोधरा का जन्मी रूप भी निर्दय है। यशोधरा का उज्ज्वल, कोमल, मधुर, सलोनिया, छोटा-सा छोटा राहुल जब चंद-खिलनी लेने के लिए डड़ करता है तो माता का इतना आह्लाद से भर जाता है। एक गोप भी की भांति यशोधरा ने राहुल की गोप्य बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। उसने उसे चिंता वाली, उचित-अनुचित की शिक्षा दी है। वह अपने पुत्र में ही पिता की प्रतिमूर्ति देखती है।

यशोधरा के विराहिणी रूप पर भी कवि ने अच्छा प्रकाश ढाला है। विराहिणी गोपा रात-दिन आँसू बहती है। उसे जान पड़ता है कि जैसे उसका जन्म केवल रोने के लिए ही हुआ है। वह अबला जीवन की यह कहानी आरंभ होती है, जिसमें ‘अँचल में है दूध और आँखों में
पानी।' राहुल के सामने रोने से राहुल को कष्ट होता है, इसीलिए वह उसके सो जाने पर ही जी भर कर बेंशन करती है। उसका कालवालनिधीन बियोग निराशाग्रस्त नहीं दिखाई पड़ता। भेदनाशो उसके प्रेम की दुःखीता सूचित करती है। अपने दुःख में सब कुछ भूलकर सामान्य मानवी बन जाने में ही हम विपयोगिता के जीवन की सार्थकता है।

प्रस्तुत काव्य में यशोधरा का मानिनी रूप भी व्यक्त हुआ है। डॉ. वासुनिे नंदन प्रसाद लिखते हैं- "गुरृजी ने यशोधरा के इस मानिनी रूप में एक अभिनव चरित्र की सृष्टि की है जो आधुनिक काव्य-साहित्य की अपूर्व देख है।...कवि के समस्त नारी चरित्रों में यशोधरा के चरित्र की सृष्टि उसकी मोहितका की परिचालण है। मानिनी और अनुरागिणी नारी का इतना सूंदर और संतुलित रूप बने न तो कहीं देखा है और न कहीं पाया है-न प्राचीन संस्कृत में, न आधुनिक साहित्य में।"  "यशोधरा के स्वामी सिद्धि प्राप्त करके कपिलवस्तु तीतर्क हैं। शुद्धिहर और महान्यावती यशोधरा की समझाता है कि वह अपने पति के दर्शन के लिए प्रस्तुत हो जाए, किंतु वह गीतम के सामने नहीं जाती। अंत में सव्यसाय भगवान बुध यशोधरा के पास भिड़ बनकर पधारते है और उन्हें कहना पड़ता है-\n
"मानिनी, मान तनो लो, रही तुम्हारी बान।

बानिनी, आया स्वयं दूरार पर यह तब तत्तत्राण।""

इस प्रकार यशोधरा की चरित्र-सृष्टि आधुनिक युग की नारी भावना के अनुसार की गई है तथा उसके द्वारा नारी के सामान्य जीवन की नहीं, बल्कि उसके उदात्त चारित्र को प्रकट किया है।

6.5.19.3 भाव-विज्ञान

यशोधरा के अंगी-रस के बियोग में विप्रज्वन विद्वानों की भिन्न-भिन्न धाराग्यों है। कुछ विद्वान इसमें विप्रलंब श्रृंगार का प्रथमान्य स्वीकार करते हैं, कुछ कहते हैं कि वाक्तत्त्व का और कवियों कार्य रस को प्रधान मानते हैं। श्री नाभेशवर सिंह ने 'साहित्य-संवेद' में लिखा है- "यशोधरा में कहना और वाक्तत्त्व की प्रधानता है, इन्हीं दो रसों से वह कहा-काव्य और ग्रीत है। श्रृंगार-रस का तो उसमें भाव-रस है। श्रृंगार की सामग्रियों तथा उसके उपदानों का यत्र-यत्र कुछ अवध की भी गया है, तो वह भी कहान्यों से है।" 6.5.19.3 इसके पूर्व श्री शिवबालक राशने प्रवास जनित विप्रलंब श्रृंगार को ही यशोधरा का अंगी रस मानते हुए लिखा है- "यशोधरा-विलाप में न शांत-रस है, न कहना रस और न कहना-विप्रलंब है, वह प्रवास जनित विप्रलंब श्रृंगार का सरस और सकुरण चित्र है।" 6.5.19.3 दूसरी ओर डॉ. वासुदेवनंदन प्रसाद
नेवरोधरा के शांत-रस प्रथान काव्य स्वीकार किया है।”

इस काव्य के आदि और अंत में शांत रस की व्यंजना हुई है। जहाँ बुद्ध का आत्मचित्त है वहाँ शांत रस है। यद्यपि कथा का पर्यवसान शांत में हुआ है तथापि मुख्य रस शृंगार है। यशोधरा जननी के रूप में भी आती है। राहुल के कारण वास्तव रस का अच्छा परिपाक हुआ है। तोरी के रूप में जो गीत अवतारित हुए हैं वे वास्तव के संदर्भ निर्देशन है। यशोधरा के मध्यांश में वियोग-वर्ण विन्यास हुआ है। इस मध्यांश में वियोग की अभिलाषा, चिंता, स्मृति, उद्धंग, उपन्यास, प्रथा, नथ, उपचार और मूर्चा आदि अवस्थाएँ विन्यास हुईं। विरह वर्ण न उठाना तक, न शर्याक के नि.विवाहायम का मानसिक पक्ष ही निरुपित किया है।”

सिद्धराज (सन १९३६ ई.)

यह चरित्र-प्रथान खंडकाव्य भारत के मध्यकालीन वीरों के चरित्र के परिवर्तनार्थ लिखा गया है। इसकी रचना का प्रारंभ गुरुजी ने सन १९२९ ई. में किया था किंतु इसका प्रकाशन सन १९३६ ई. में हो सका। ‘सिद्धराज’ अमृतेश जयसिंह की उपाधि है। यह एतिहासिक तथ्य है कि वह सिद्धपुर पाटन का राजा होने के कारण ‘सिद्धराज’ कहलाता था। यह सिद्धराज जयसिंह विषयक आख्यानक काव्य है। कवि ने इस काव्य रचना के लिए महामहोपाध्याय और केसरी के निःशंक, श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी के तीन उपन्यासों तथा श्री चित्तामणि विनायक वैंड के अंतर्गत श्री ‘मधुमुनी भारत’ से एतिहासिक तथ्यों को ग्रहण किया और रामनरेके के संबंध में गुनराती बंधु एवं पी. शाह से जानकारी प्राप्त की थी।

संपूर्ण काव्य के दूसरे रचना जयसिंह, जिसकी उपाधि सिद्धराज थी जो उसके शास्त्र और वीरता का निर्देशन है। इसे खंडकाव्य की संज्ञा देते हुए पाँच सर्गों में विभाजित किया गया है। लेकिन यह रचना में पाँच दृष्टि एक दृष्टि से असंबंध तो है ही, उनमें स्वयं कथा भी स्वतंत्र
है। इस तरह सिद्धराज पाँच कथाओं वाला एक ऐसा काव्य है, जिसके फल का उपभोक्ता या केंद्रीय पात्र जयसिंह है। आचार्य रामचंद्र गुप्त ने गुजरात के सोलंकी राजा सिद्धराज का समय 12 वीं शताब्दी माना है।123 श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी के अनुसार मथ्यकाल में गुजरात साम्राज्य की नींव डालनेवाला मूलराज सोलंकी था। मूलराज सोलंकी के प्रपीत का नाम भीमदेव था। भीमदेव के पुत्र का नाम कणिदिव था। कणिदिव की पत्नी का नाम मीनल देवी था।

इसी कणिदिव का पुत्र जयसिंह था।123 छठे स्थानों पर कवि की अपनी मौलिक उद्भवनामें भी हैं, पर वे सब प्रारम्भिक हैं, उनसे मुख्य कथा की ऐतिहासिकता में कोई बाधा नहीं आती।

2.5.2.9 वस्तु-विवेचन

गुजरात ने पाँच संगों में सिद्धराज जयसिंह के जीवनाध्याय का वर्णन किया है, पर यह उसके संपूर्ण जीवन का आधार नहीं है। उसके राजनव-काल की कार्यत प्रमुख घटनाओं के आधार पर, जो ऐतिहासिक है, कवि ने कथात्मक पद्धति से जयसिंह का चरित्र विकसित किया है। अत: यह चरित्र-प्रथण वर्णनात्मक ऐतिहासिक खंडकाव्य है। नायक का विश्व वातावरण व्यक्तित्व है, जो सदृशु, और दुरुभाग्य, उद्यान और पदन, आदर्श वृत्ति और विधार्थी वृद्धि, सफलता और विफलता आदि का समाहार है। कवि ने पूर्वार्षिक संबंध में आबद्ध कथावस्तु को संस्थापित नहीं किया है, वरन् चरित्र-विवाह स्नेहित करने की वृद्धि से घटनाओं का संकलन किया है।

'सिद्धराज' के प्रथम संग की कथा मीनल देवी की सोमनाथ यात्रा पर जाने से प्रारंभ होती है। मार्ग में ही उसकी भेंट एक स्थान और उसके पूर्व से होती है। वे दोनों महोबा राज्य के जुलौती ग्राम के निवासी हैं। वे दोनों बिना सोमनाथ के दर्शन किए लौट रहे थे। इनके लौटने का कारण था सोमनाथ जाने वाले यात्रियों पर लगने वाला यात्री कर। मीनल देवी माता और पुत्र के तकनी द्वारा प्रभावित होती है तथा गुप्त को तलवार भेंट करती है। यात्री-कर से उसका मन व्यक्ति हो उठता है। अत: वह भोजन त्याग कर उपसाग ही नहीं करने लगती, अपितु बिना सोमनाथ के दर्शन किए लौटने को तलपर हो जाती है। जयसिंह मार्ग में माता से मिलते हैं और उसे सोमनाथ के दर्शन के लिए लौटा लते हैं। इतना ही नहीं, मातृभक्त जयसिंह मां की इच्छा पूरी करने के लिए कर-संबंधी आज्ञा-पत्र को अपनी मां के चरणों पर चढ़ा देते हैं। इस संग में जयसिंह की माता मीनल की प्रमुखता प्राप्त हुई है। साथ ही इसमें जयसिंह की मातृभक्ति और उसकी वातावरण का निर्देशन हुआ है।
भित्रीय सर्ग में सिद्धराज अपनी अनुपस्थिति में पाटन पर आक्रमण करने वाले मालव राज नर्वर्मा का प्रत्याक्रमण करता है। नयंसिंह आन-बान रखनेवाले युवक भी है। सोमनाथ गए हुए नयंसिंह की अनुपस्थिति में मालवराज नर्वर्मा पाटन पर चढ़ाई करता है और नयंसिंह के मंत्री सांतु ऐ से जय के प्रमाण-पत्र के रूप में सोमनाथ यात्रा का फल लेकर लौट जाता है। सोमनाथ से वापस आने पर जब राजा नयंसिंह को इस घटना का पता चलता है तो वह क्रोधाभिमुख होकर मालवा पर घेरा डाल देते हैं। वर्षो तक युद्ध होता रहा। कुछ वर्षों बाद नर्वर्मा की मृत्यु हो जाती है। उसका पुत्र यशोर्मा मालवा के सिद्धार्धन पर बैठता है। राजा नयंसिंह इस अवसर पर अपना प्रतिनिधित्व व्यक्त करने का प्रयास करते हैं।

बारह वर्ष तक युद्ध चलता रहता है और एक दिन राजा नयंसिंह का यश-पदह नामक हाथी पेड़ के किवाड़ तोड़ने में सफल हो जाता है। इस तरह यशोर्मा पराजित होता है किंतु नयंसिंह उसे अवंती का राज और गुजरात की सुंदर जड़ाऊ कोष वाली तलवार देकर हाथी पर पार्व में बिठाकर पाटन में प्रवेश करते हैं। इस युद्ध में वह अपनी युद्धवीरता, सहानुभूति आदि गुणों के कारण मालवा के प्रसिद्ध वीर जन्नदेव को अपनी ओर आकर्षित करने में सफल हो जाते हैं।

जन्देव उनका प्रभाव संघर्षक और मित्र बन जाता है। इस प्रकार भित्रीय सर्ग में सिद्धराज की युद्धवीरता पर प्रकाश डाला गया है।

तीसरा सर्ग सिद्धराज के मानवीय गुणों को उद्घाटित करता है। सीराण्ड्र का राजा नवधन नयंसिंह के हाथों प्ररतित हो चुका था। मरते समय तक उसे नयंसिंह से बवल लेने की आकांक्षा बनी रही। उसके चारों पुत्रों में से कोई भी ऐसा वीर न था जो पिता की यह इच्छा पूरी कर सकता। इसी कारण उसके पीएच और मध्य्याल के पुत्र खंगार ने प्रतिशोध लेने की अस्वाद लेने की अस्वाद साला ली।

सीराण्ड्र के एक सामसन सिंधुराज के यहाँ एक कन्या का जन्म हुआ, किंतु उसके श्रद्धेश के कारण राजा ने उसे वन में विश्रामित कर दिया। इस कन्या का पालन-पोषण जूनागढ़ के एक निःसंतान कुमार वंशपति ने किया और उसका नाम रानक दे रख दिया गया। उसके पुत्र की चर्चा चारों और फैल गई। राजा नयंसिंह भी उसे प्राप्त नहीं कर पाए थे किंतु श्रद्धों आदि कुछ कारणों से उसे प्राप्त करने में असमर्थ रहे और सीराण्ड्र खंगार ने उससे विवाह कर लिया।

उसके दो पुत्र भी उत्पन्न हुए। राजा नयंसिंह उस पर इतने मुन्दे थे कि विवाहिता होने के बाद भी वे रानक दे को पाने की इच्छा करने रहे। उन्होंने सीराण्ड्र की राजधानी जूनागढ़ पर चढ़ाई की और खंगार के भांजों को लालच देकर अपनी ओर मिला लिया। इस तरह नयंसिंह ने जूनागढ़ जीत लिया। इस लड़ाई में उन्होंने खंगार की घोड़ी हट्या नहीं की वल्ला रानक दे के बोलों
मायूस बच्चों को भी समोलिया समझते हुए मीठे के घाट उतार दिया। इतना ही नहीं, संजानीन रानक दे को भी एक खांड़ी पर बैठकर वे बड़वान नामक स्थान पर ले गए। रानक दे ने जब चैतन्य अवस्था में आयी तो उसके जयसिंह को उसके पिता के कुल्लों के लिए उपग्रहित किया। राजा जयसिंह तो हर क्रीमत पर रानक दे को अपनी रायी बनाना चाहते थे। वे बलात्कार के लिए तैयार हो गए। सिंहराज कथिते के अनुसार इस अवसर पर वोर जगदेव ने वहाँ पहुँचकर रानक दे के सतींच की रक्षा की और वह अपने पति खंगार के सिर को गीद में रखकर सती हो गयी। इस प्रसंग में कवि जयसिंह के उदात्त चरित्र की रक्षा करते में अपमर्यम रहे हैं। इस सम में खंगार का चरित्र उदात्तता और वीरत्व की गार्मिया से मंडित है और रानक दे को तो कवि ने संदर्भ, प्रेम और सतींच की मृति के रूप में चित्रित किया है।

चौथे सर्ग में जयसिंह के अंतर्दृष्टि को उभारने का प्रयास किया गया है। रानके के कांड से उनका उत्साह बंग-सा हो गया है। उसकी माँ भील दे अपने पुत्र को मानसिक रूप से अस्तित्व नहीं देखना चाहती थी। अतः मंजी मेहता मुंजाल की सम्पति से वह अस्वस्थ हो जाती है। ऐसा लगता है कि उसकी मरणाधीनता निकट है। इस अवसर पर वह जयसिंह के सामने सपातवालक राज्य जीतने की अंतिम इच्छा प्रकट करती हैं। मातृभूक राजा जयसिंह भी की इच्छा पूर्ति हेतु सपातवालक जीत कर उसके राजा अण्डराज को बंदी बना लेते हैं। अण्डराज के रूप-संदर्भ, शक्तिय, शिवाया आदि गुणों से मीनल दे अल्पमात्र प्रभावित हो जाती हैं। दूसरी ओर राजा जयसिंह की एकमात्र कन्या अण्डराज को वेखते ही मोहित हो जाती है। इतना ही नहीं, अण्डराज के शील, तर्कसीलता और वीरत्व से राजा जयसिंह के मंजी मुंजाल मेहता और काक भट्ट भी उसकी ओर आकृष्ट हो जाते हैं। कांचने का विवाह अण्डराज से संपन्न हो जाता है। इस सर्ग में कवि ने जयसिंह की मातृभूति, मीनल दे की पुजा-हित-चिता और कृपानीतिज्ञता, कांचन दे के रूप-संदर्भ तथा प्रेम, अण्डराज के शील संदर्भ, शिवाया, वीरत्व आदि गुणों का निर्देशन किया है।

सिंहराज का पाँचवाँ सर्ग राजा जयसिंह के हड़प-परिवर्तन का सुख है। कवि ने इस सर्ग में जयसिंह के प्रताप, तेज, शिवाया, धर्मसम्मत भाव की ओर संकेत करते हुए कहा है कि वे मल्ल क्रीड़ा, मंदिर-निर्माण, ललित कालों की उन्नति, प्रजापालन, दया, धर्म, वान की ओर प्रवृत्त हो गये थे किंतु एक दिन जब एक भाट ने महोदा के राजा मदनमांक के गुणों आदि का वर्णन किया तो वे उससे मिलने को आतर हो गए। वे दलबल सहित महोदा की ओर चल पड़े। मांग में ही महोदा के गृह सचिव क्षेत्र वर्मा से उनकी भंड होती है। वह क्षेत्रमान बहुत युवक है जिसे सोमनाथ के वर्शन करने जाती हुई मीनल दें ने संस्कार प्रदान करते हुए राज तलवार दी
भी। राजा जयसिन्ह लेखनमा के शिष्यावाचर पर मुन्द्र हो जाते हैं और महोद्वा के राजा का प्रेम प्राप्त करने के लिए महोद्वा चल पड़ते हैं। महोद्वा में उनका उचित सत्कार होता है। दूसरी भेंट में राजा जयसिन्ह और मन्दवमा में मातृत्व के संबंध में विचार विषय होता है। यहाँ राजपूतान की तुलना पारस्परिक कलह और युद्ध, धार्मिक विरोध, आदि के संबंध में मदन वर्मा-अपने विचार प्राप्त करता है। यथा-

"आर्यभूमि अंत में यही संस्कृतियाँ सबकी।
होगा एक विश्व-तीर्थ भारत-भूमि का."१२४

काव्यांत में नायक की अपेक्षा मदनवर्मा को प्रमुखता प्राप्त हुई है। तुल्य-मेन्सी के बुधवार सिस्वराज के महत्त्व की रक्षा भी की गयी है।

२.५.१२.२ पात्र-परिचय

इस कथा काव्य में पुरुष पात्रों में जयसिन्ह के अतिरिक्त नर्मदार, यशोवर्मा, नवगन, खंगार, नगदेव, अरणराज, मदनवर्मा, लेखनमा आदि का चित्रण हुआ है। नारी पात्र तो तीन ही है मीनल वे, रानक वे और कांचन वे। जयसिन्ह के अतिरिक्त सभी पात्र अतिशय गौण है और प्रसंग विशेष में ही प्रकट हुए हैं। यहाँ प्रमुख पात्रों की चर्चा उपलब्ध होगी।

* सिस्वराज जयसिन्ह

‘सिस्वराज’ जयसिन्ह मैथिलीशारण गुप्त के ‘सिस्वराज’ नामक खंडकाव्य का नायक है। गुप्तनी ने इस काव्य में जयसिन्ह की चारित्रिक विशेषताओं को उपार्थन का यत्न किया है, किंतु अत्यंत तटस्थ होकर, इसीलिए पहले सर्ग में जो जयसिन्ह मातृभक्ति और आविर्ष्ट चारित्र वाला युद्ध प्रतीत होता है, वही जयसिन्ह रानक वे के प्रसंग पर अपनी सदासाधनता का परिचय नहीं दे पाया है। आत्मिक सर्ग में कवि ने चारित्रिक दृष्टि से उसे एक उच्च धरातल अवश्य प्रदान किया है। धीरे-धीरे उसकी मनोवृत्तियाँ का उच्चारण होता है। सिस्वराज के चरित्र की मुद्रा विशेषताएँ इस प्रकार है- वह मातृभक्ति, धूर्-वीर, उदार साहसी और महत्त्वाकांशी है। डॉ. कमलाकांत वाजक के अनुसार वह मातव है और उदार चरित्र नहीं है। उनके शब्दों में- "सिस्वराज में जिस भांति कथा-संगठन वृद्धि पूर्ण है उसी नायक का चरित्र भी सर्वत्र उत्कर्षशील नहीं है। वह प्रमाण शाली व्यक्ति है और उसने अपने देश के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। उसके चरित्र में युद्ध-सन्नद्धता तथा विषयासक्ति के कारण किसी उपक्रम उपयुक्त हो गया है। वह एक सामान्य चरित्र है और उत्थानशील प्रकृतियों से वृक्त व्यक्ति।"१२५
नरभर्म युद्ध प्रसंग में उसकी बीरता और नीति-निपुणता का भी परिचय मिलता है। यथोर्वर्तम तथा जगदेव की प्रेम तथा आदर देकर उसे मित्रता स्थापित करता है। राणक दे के प्रसंग में कवि ने उसे कामजन्य क्रोध से अभिभूत विख़्याया है। रानक दे के दो पुर्वों के वच और राणक दे से बलात्कार की चेष्टा के संदर्भ में कवि ने उसका नैतिक पतन विख़्याया है। चौथे सर्ग में वह बेर शोधन के लिए अपनी कन्या का विवाह अर्णोराज से करता है। इस सर्ग में कवि ने उसके परशुराम की योजना की है। इस कवि चौथे सर्ग में उसका चरित्र पुनः उच्चता की ओर ग्रस्त होता है। पंचवें सर्ग में कवि ने उसे सर्ववर्मा समस्माय का पोषक, प्रत्यावर्तक एवं अक्षंभोगिन राजा, सांस्कृतिक समन्वय का विश्रासी तथा प्रति-पश्चिम का आदर करने वाला दिखाया है। तत्त्वय सर्ग में किद्रमोराज काव्य में जयसिंह का चरित्र एक गतिशील चरित्र है।

- मदन वर्मा

सिद्रमोराज काव्य के प्रमुख पाठों में महावर्तक के राजा मदन वर्मा भी एक महत्वपूर्ण पाठ है। राजा जयसिंह उनपर चढ़ते करके उसके प्रति निर्भरता का चाहता था। इत्यादि उनके चरित्र की दृढ़ता मनस्तिक्षा और आदर्श गुणों के कारण जयसिंह ने उनसे मेरी भाव स्थापित किया। सिद्रमोराज काव्य के पाँचवें सर्ग में मदन वर्मा के आदर्श चरित्र का गायन है। उसके गुणों का वास्तविक परिचय जयसिंह और मदन वर्मा के अंतर्गत वातावरण में प्रकट होता है। इस प्रसंग में वह प्राचीन स्वतंत्रता का पक्षधर, उत्कृष्ट, धोर, व्यक्ति और वह भ्रष्ट भ्रष्ट के रूप में प्रकट होता है।

- अर्णोराज

‘अर्णोराज’ सिद्रमोराज का एक महत्वपूर्ण पाठ है। ऐतिहासिक इतिहास से वह अन्तर्गत का राजा था। राजसिंह ने सापडल को जीतकर अर्णोराज को बंदी बना लिया। सिद्रमोराज काव्य के चार प्रसंगों में उसकी शिष्टता, नमोत, साहस, बिचारों की दृढ़ता, वीरोचित वर्ष आदि गुणों के दर्शन होते हैं। वह कष्ट दे के प्रति भी आसक्त है। उसका स्वाभिमान, वीरत्व भाव और तर्क शीलता मुजराज वातावरण में रथ रखा है। उसे राज्य से अधिक स्वतंत्रता और मन की स्वतंत्रता की चिंता है। निष्कर्ष यह है कि सिद्रमोराज काव्य का अर्णोराज शासकीय रूप से ही सुंदर नहीं है, बल्कि वह साहसी, वीर, चरित्रवान तथा मनस्ती युक्त है।’  

- मीनल दे

मीनल दे चंपूरु के जैनधर्मी सामंत की कन्या थी। इनका विवाह गुजरात के राजा महाराज कर्न सिंह के साथ हुआ था। इनका पुत्र जयसिंह था। जब जयसिंह तीन वर्ष का था
तभी इनके पिता का वेहांत हो गया था। मीनल दे ने उसका पालन-पोषण ही नहीं किया अपितु उसे शासन संबंधी उचित शिक्षा भी दी थी। सिखराज काय्य के दो प्रसंगों में मीनल दे के चरित्र का उद्भास हुआ है। प्रथम सर्ग में सोभनाथ के दर्शन करने जाने के प्रसंग में कवि ने उन्हें तपस्विनी, शात-कात रूप की स्वामिनी, प्रोढ़ बुद्धि वाली, पतिपरायण, तेजस्विनी आदि माता के रूप में प्रस्तुत किया है। उसका इद्य भक्तिभावना से ओत्सर्फत है। इसी सर्ग में उनका स्वामिमान और वास्तव भाव भी व्यक्त है। चौथे सर्ग में उनकी कुटनीतितिता, हास-परिहास प्रियता तथा रजनामा के योग्य वर्ड के भी दर्शन होते हैं।

• रानक दे

'सिखराज' काय्य का दूसरा मुख्य नारी-चरित्र रानक दे का है। यह भी एक ऐतिहासिक पात्र है। इसके पिता का नाम सिधुराज है। ग्रह-दोष के कारण इसके जननी और जनक ने इसे त्याग दिया था और इसका पालन-पोषण जुनागढ़ में निवास करनेवाले कुमार अंतिम ने किया था। सिखराज इसके रूप नावन्य पर मुख्य था। वह भी उसकी ओर आकर्षण था, किंतु इसका विवाह जुनागढ़ के युवराज खंगार से हो गया था। इसके दो पुत्र भी थे। राजा जयसिंह ने जुनागढ़ पर चढ़ाई कर खंगार और रानक दे के दोनों पुत्रों का वध कर दिया था। सिखराज जयसिंह रानक दे को अपनी रानी बनाना चाहता था इसलिए जुनागढ़ को जीतने के बाद रानक दे को बलपूर्वक बढ़वाना नामक स्थान पर ले गया था। वह उससे बलात्कार करना चाहता था, किंतु उसके मंत्री काकभट्ट ने इस कृत्य को अनुचित बताकर जयसिंह का विरोध किया। अंत में रानक दे अपने पति के साथ सती हो गयी। ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार रानक दे ने जयसिंह का आयोजन किया था। इसलिए वह प्रतिशोध लेने के लिए रानक दे को बलपूर्वक बढ़वाना ले गया था। गुस्ती ने रानक दे को राजकुल-संबंध वेतनी रूपनी, करणामयी, गंगाच, पारिवारिक कार्यों में रचि लेनेवाली, स्थिरमयी, कविता और संगीत में सचि खचनेवाली चित्रित किया है। रानक दे और खंगार के प्रसंग में उसे सुरूचि संपन्न विदुषी, तरक्षिता, स्वामिमानी और आदर्श प्रेमिका के रूप में चित्रित किया गया है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि गुस्ती के इस काय्य में रानक दे के रूप-सीद्धार्थ तथा आंतरिक सीव्यर्ड को अत्यंत कृुलाता के लाभ चित्रित किया है।

• कांचन दे

सिखराज काय्य के प्रमुख नारी-पात्रों में सिखराज जयसिंह की कन्या कांचन दे का भी विशिष्ट स्थान है। कांचन दे एक ऐतिहासिक पात्र है। इसका विवाह अजमेर के राजा अर्णराज
र कब ने कांचन दे को कांचन की पुतली, सफल परिवारिका, करणा तथा ममता की मृति और दुःख की अधिष्ठात्री के रूप में चित्रित किया है। ‘सिद्धराज’ काव्य में कांचन दे रूपवर्ती, स्वाभाविक, स्‍वयंस्वी, जिनसे और आदर्श प्रेमिका के रूप में चित्रित किया है।

4.5.12.3 भाव-व्यंजनाः

इस काव्य में तीर्थ-प्रत, राजा और प्रजा, तथा धार्मिक एकता, एकचार्य राज्यवाद, राज्यवाद, सांस्कृतिक समान्य, प्रजा जनों की आत्मरक्षा के लिए युद्ध-शिक्षा पाप-पुण्य आदि विषयों पर कवि ने अपने मंत्र युक्त किया है। प्रधानतः उन्होंने गौड़ीजी के जीवन-दर्शन को तथा उनके अभिव्यक्त राज्यवाद को सिद्धराज काव्य में अभिव्यक्त किया है।

इस काव्य में रस का अच्छा परिपाक हुआ है। इसमें वीर रस की प्रधानता है और उसके साथ शृंगार रस की भी व्यवस्था की गयी है। संयोग और वियोग शृंगार, करण और रीत के उत्कृष्ट उदारता अन्यायार्थ ही उपलब्ध है। भक्ति और बाल्स्तन्त्र की साधना भावाभिव्यक्ति की गयी है। शोक और ग्यान को भी प्रकट किया गया है। एकाध स्तंभ हास्य रस का उद्देश्य करने का प्रयास विखाई देता है लेकिन वीर रस का संबंध तो प्रारंभ से अंततः है।

4.5.13 नुःश (सन १९४० ई.)

गुणजी ने अपने बालस्कर दुःखी अवस्था के निचाब ने के पश्चात मन को शांत करने के लिए श्रीपद वाल्मीक रामायण और महाभारत के प्रकाश भेंट किया था। महाभारत के उपयोग-पर्व में नुःश के प्रयोग को पहले गुणजी की लगा कि मनुष्य बार-बार ऊबा उठाने का प्रयास करता है, कितु मनुष्य दुःख दुर्बलता बार-बार उसे नीचे ले आता है। मनुष्य को उन पर विजय पानी ही होगी। इसलिए उसे साहसपूर्वक फि-फि उठ खड़ा होना होगा। तब तक, जब तक वह पूर्वता प्राप्त न कर ले।”“१३९३ नुःश की रचना की प्रेमण यही चित्रन है और नुःश का संदेश भी यही है।

नुःश की कथा महाभारत के आख्यान पर आधारित है। महाभारत के उपयोग-पर्व में महाभारत शल्य युधिष्ठिर को पैरपूर्वक कष्ट सहन करने का कार्य देते हैं और बताते हैं कि विपत्ति केवल तुम्हारे पर ही नहीं है, अपने इंद्र-इंद्राणी जैसे महार्ष यंगति को भी उसका सामना करना पड़ा था। युधिष्ठिर के निजाम स्वतन्त्र करने पर उन्होंने प्रस्तुत आख्यान सुनाया था। किंतु गुणजी का कथानक मौलिक है उन्होंने महाभारत से केवल कथा-सूच प्राप्त किया है।
कथा का विकास कवि का अपना एवं सर्वथा मौलिक है।" 138 गुरुग्री के ‘जयभारत’ नामक
प्रबंध काव्य में ‘नहुष’ नामक सर्ग के अंतर्गत यही कथा ज्ञात-की आक्षेपी प्रस्तुत की गयी है।

नहुष कौरव-पांडवों के पूर्व-पुरुष थे। तपस्वी त्रिसरा इंद्रासन लेना चाहता था। इंद्र ने अपने काम के दुश्मन उसे तप से दिगना चाहा, परंतु वह नहीं डिगा। तब इंद्र ने बत से उसकी हत्या कर डाली। उसके भाई वृजसुर ने स्वर्ग पर चढ़ाई कर दी। इंद्र को उससे संग्रह करनी चाहता था, किंतु वह अपने सदस्यों के निवेदन से उसका हवाला नहीं लेता। इसी प्रसंग में स्वर्ग की राणा के लिए महाराज नहुष को योग्य समझकर देवताओं ने उन्हें इंद्र-पद पर प्रतिष्ठित किया था।" 139

4.5.13.1 वस्तु-विवेचन

‘नहुष' खंडकाय में इंद्र-पद को प्राप्त करने के पश्चात मानवीय युद्धसत्ताओं और के
कारण नहुष स्वर्ग-प्रवेश होने की कथा की कवि ने पात्रानुसार और कायानुसार सात क्रांतियों में
निरुपित किया है। इस प्रसंग में नहुष के आक्षाय उसकी उत्तरी तथा वास्तव कथा गयी है, जो भरके
स्वर्ग के राज्यवास से संबंध रखती है।

प्रथम सर्ग में इंद्राणी अयत्त शरी की मनोदशा का वर्णन है। कवि ने शर्म के रूप-
सीवर्य और इंद्रलोक की सुखमा का वर्णन करते हुए शर्म की मानसिकता का प्रकटीकरण किया
है। इंद्राणी पति वियोग के कारण व्यक्त है और अपने सतीत्व का आवश्यक करती है।
वह नहुष पर इसलिए विवाद नहीं कर सकती क्योंकि-

"देव सवा देव तथा दनुज दनुज है।/जा सकते किंतु दोनों ओर ही मनुज हैं।" 140

नहुष काल्य की शरी खेत सुंदर ही नहीं, तर्कशीला, विदुषी, शक्तिकल्य तथा साहसी
भी है। उसका कथन है- "शक्तिसे ही साध्य होगा, साधित्व उसे शरी।" 141

इस काले के दूसरे सर्ग का शीर्षक ‘नहुष' है। इस सर्ग का आराध्य नारद के आगमन से
होता है। वे बिमना शरी के अवस्था को देखकर इ-रात ही उठते हैं। शरी के प्राण न करने पर
शुचि भी हैं किंतु नारद नाराय है दुर्दशा नहीं। नहुष उन्हें सम्मान देकर आसन देते हैं। नारद-
नहुष वातालाव में नहुष घरनी और उसके सुखों की प्रशंसा करते हुए यहाँ तक देते हैं-

"मेरी भूमि तो है पुण्य भूमि वह भारती, /सी नक्षत्र लोक करें आके आप आरती।" 142
वह स्वर्ग की एकरसता, सुख आदि की चर्चा करते हुए अपनी एकाकी दशा की ओर संकेत करते हैं। इस प्रकार नहुष सवेह इंड्र-पव पाकर अपने मानवीय पुरूषार्थ से विरत नहीं होना चाहते। उनके मातृभूमि-प्रेम को तथा लोक-हित चितना को अभिव्यक्त किया गया है।

रचना के तीसरे सर्ग का शीर्षक ‘उर्वशी’ है। इस प्रसंग में उर्वशी ने स्वर्ग की वैधानिक राज-व्यवस्था का विवरण देकर इंड्र-पव के राज्य-प्रतीक की उपयोगिता स्पष्ट की है। अपनी उर्वशी नहुष को स्वर्ग के सुखों का उपभोग करने का परामर्श देती है, किंतु नहुष अपनी पृथ्वी के लिए व्यावस्था हैं। नहुष द्वारा जल-फूल की चर्चा चलाने पर उर्वशी ने जो तर्क दिये हैं उनसे धरती पर पैली विषमता के कारणों का तो जान होता ही है, साथ ही उर्वशी के चरित का भी एक नया पक्ष उपरकर सामने आता है। उर्वशी मात्र गाने और नृत्य करने वाली अपना न होंकर, विवृति भी है। उसके मत से मनुष्य के लिए अत्म, तप, त्याग, कर्मयज, कौशल, पुरुषार्थ, स्पर्धा आदि आवश्यक है।

नहुष के चौथे सर्ग का शीर्षक ‘स्वर्ग-भोग’ है। इस प्रसंग में नहुष की स्वर्ग-भोग में प्रभृति विवाह गयी है। वह सघ-लाता इंद्रणी को देखकर उस पर आसक्त हो उठा है। इस सर्ग में नहुष का कथन है- “तो फिर तुम्हें लो कुछ काम इस देव से।”133 उत्तर में उर्वशी के कथन में विभावधनी की व्यंजना हुई है-

“आप में हमारा काम आज मूर्तिमांत है, चलिए न नंदन में उत्पन्न बसें है।”134

यहीं से नहुष स्वर्ग-भोग के लिए सनन्द हो गए हैं। रात-दिन स्वर्ग-भोग करने पर भी उन्हें तृप्ति नहीं हुई। अतः में शरी की भलक पाकर उनके अधूरे नयन खुल गए। शरी कवि ने शरी के रूप-सौंदर्य की मायबता और नहुष पर पड़े उसके प्रभाव का प्रसंगनुकूल विचार किया है। नहुष के मन में शरी-प्राप्ति की इच्छा उत्तरोत्तर प्रवल होती विख्यात हुई गयी है।

पाँचवे सर्ग का शीर्षक ‘संदेश’ है। इसमें नहुष शरी के पास संदेश भेजते हैं। इस प्रसंग में नहुष का प्रेम-संदेश पाकर शरी की यह प्रतिक्रिया वर्णित हुई है-

“त्यागो शरी-कांवं बनने की पाप-वासना, /हर ले नरत्न भी न काम-देवोपासना।”135

शरी के लिए नहुष का संदेश आसादायक बन जाता है। वह नहुष को मात्र ‘भूत्य’ और ‘प्रतिनिधि’ ही मानती है। इंद्रणी के विभार जानकर नहुष आपे में न रहकर श्रुद्ध भी हो उठते हैं। इसी प्रसंग में इंद्रणी को उसकी सख़्त देवगुरु आचार्य बृहस्पति के पास ले जाती है।
छठे सर्ग का शैष्यक ‘मंत्रण’ है। इस सर्ग में नुस्क शरीच को इंद्र के आवास में बुलवाने के लिए देवगुरु के पास संदेह पिंजरवाता है और देवगुरु इस संदेह का उत्तर बाद में प्रसिद्ध करने की बात करते हुए मुख्य देवों से मनुष्य करते हैं। इस देव मंत्रण में शरीच के मत को भी जानने का प्रयास किया जाता है। शरीच नुस्क के इंद्र लोक का राजा बनाने के विरोध थी किंतु देवताओं के व्याख्यान से कवि ने मनुष्य के ऊँचे उठने वाले भावों की प्राप्ति करते हुए धरती के विभाजन, भाषा-समर्थन, हिस्साभाषा आदि की ओर संकेत किया है। शरीच नुस्क के प्रसंग का चोर विरोध करती है और अंत में निष्कर्ष निकालती है कि ऋषिगण अपने कामों पर नुस्क की शिक्षा उठाकर शरीच के निवास-स्थान तक ले लाएँ। इस तरह से इस विवाह में अपूर्वता रहेगी।

नुस्क के अंतिम सर्ग का शैष्यक ‘पतन’ है। इसमें ऋषियों द्वारा पालकी उठाने, नुस्क के मनोभावों के प्रकटीकरण, कथन, त्यागभाव आदि का चित्रण है। इस प्रसंग में कामातुर नुस्क का पदाधिकार ऋषियों को घाड़े देने के लिए विशेष करता है, क्योंकि यह वर्ग-विशेष का अपराध है। नुस्क के प्रसंग को कवि ने परिवर्तित कर दिया है। उन्होंने ‘सर्व-सर्प’ प्रयोग सिद्धांत के अर्थ में नहीं किया है, वरन् उसके पदाधिकार ने ऋषि को पीड़ित किया और फलते हुए श्राप दिया गया।

“पार या या साँप यह, डूंगे गया सोंग ही।/पांड, पांड हो तू होकर भुजन ही।”786

इस श्राप को सुनकर एकबारी तो नुस्क हतचेत हो जाते हैं, किंतु संभलकर वह श्राप को शीरोधार रूप में खड़े प्रकट करते हैं। वह काम-विकार को त्याग्य बताते हुए शरीच से क्षमा प्रार्थित है, किंतु अपराध मानते हुए वे अपने को परावर्तित नहीं मानते। इतना ही नहीं, धरती के मानव नुस्क निर-निरकर उठाने को ही मानव की परिणति मानते हैं।

“गिरना क्या उसका उड़ा ही नहीं जो कभी?
mें ही तो उठा तो आप, गिरता हूं जो अभी।
फिर भी उड़ूँगा और बढ़के रहूँगा में,
नर हूं, पुरुष हूं में, चढ़के रहूँगा में।”787

इस प्रकार कवि ने भूल कथा में परिवर्तन करते हुए शरीच के द्वार की आशंका, नाराय के समय पुरुषार्थ की महिमा तथा उद्धरण नुस्क प्रसंग में धरती के अभाव के संबंध में नुस्क की चिंता को व्यक्त करते हुए प्रसन्नता काव्य को अधिक मौलिक और युगानुकूल रूप दिया है।
4.5.13.2 पात्र-योजना

इस काव्य में दो ही प्रधान पात्र हैं- नहुष और शाचि। नहुष जहां मनुष्यता और पुरुषवर्त्त का प्रतीक है वहां शाचि का चरित्र एक सामाजिक नारी का चरित्र है जो पति रूप में संयुक्त और नहुष से आशिक है। नहुष नायक है और शाचि प्रतिनिधिक। दोनों के चरित्र पर यहाँ स्वतंत्र रूप से प्रकाश दाला जा सकता है-

• नहुष नहुष महाराज आयु के पुत्र थे तथा इनकी माता का नाम स्वर्भनुकुमारी थी। इनके ही पुत्र बप्पि थे। नहुष महाराज नहुष और शाचि के लिए कारण महाराज नहुष पृथ्वी के इंद्र बन गये। राक्षसराज तपस्वी निरस का वध इंद्र ने कर दिया था। उसके भाई वृषभासुर को भी कपट और धोंगे से मार दिया। उसने नहुष को भी कपट किया। नहुष महाराज नहुष को योग्य समझकर राक्षसों ने इंद्र के स्थान पर प्रतिष्ठित किया। इंद्र-पद पर रहते हुए उनकी महाकाव्या बढ़ते लगी और वे शाचि के पति बनने की कामना करते लगे। तब, उन्होंने शाचि के पास विवाह-प्रस्ताव प्रस्तुत किया। इंद्राणि ने कुछ समय माँगकर इंद्र की आज्ञा से नहुष को ऋषियों द्वारा उठाने गई पालकी पर चढ़ने की स्वीकृति दी। जिस समय नहुष ऋषियों द्वारा उठाई गयी पालकी पर आसीन होकर शाचि के प्रासाद की ओर जा रहे थे, तभी उतावली के कारण उनका पैर ऋषि को लगा। इस पर कुछ होकर नहुष को स्वर्गच्युति तथा सर्प होने का शाप दे दिया।

गुप्तजै की रचना ‘नहुष’ में कवि ने मूल कथा में किंचित परिवर्तन करते हुए नहुष का चरित्र-विवरण किया है। नहुष’ के शाचि सर्ग में शाचि की राजी नहुष को विशेषक्त, महामानव कहती है। नहुष’ सर्ग में नहुष अतिथि-साक्षारी, मानी, विनम्र, व्यवहार कुशल, मनस्वी, वातालाप-कुशल, पुरुषवर्त्त के पश्चात, धरती के पश्चात, प्रथमों पर विश्वास करने वाले, विश्वदेश का विश्वास करने वाले, साहसी, और स्वाभिमानी हैं।’’५३ ‘उपनिषद’ शीर्षक के नहुष आदेश-प्रमोद प्रिय, उदार, मानवविदित चिन्तक है। ‘स्वर्गभोग’ शीर्षक में उनका कर्मसंयोजन विशाल देखते है। इस सर्ग में वह मानवविदित से पतन की ओर उन्मुख होता है। अर्थात् शाचि के एक जलक से नहुष सुध-बुध भूना देता है और उसे आफ़ित्त-आत्मचित्त का जान नहीं रहता। इसीलिए ‘संवेश’ सर्ग में वह शाचि की सेवा में प्रेम-याचना प्रस्ताव प्रस्तुत करता है और शाचि द्वारा प्रस्ताव अस्वीकार किए जाने पर उसके स्वाभिमान को चोट लगती हैं।
“प्रस्तुत मै नाना रखने को एक तृण का, / और मै कुली हूं परमाणु के भी कुली का।
अपना अनादार परतु यदि मैं सहूँ, / तो फिर ‘पुरुष हूं मैं किस मूह से कहूँ।’”

उसके पुरुष का यही अपमान ‘मंत्रण’ शीर्षक में गुरु बृहस्पति के पास शाची की मांग का संदेश भेजने को बाध्य करता है। ‘पतन’ सर्ग का नहुँ पुरुषार्थ का प्रतीक एवं मानव-गारिमा से युक्त है। पालकी उठाने वाले चाहे ऋषि ही कियां न हो, इस समय तो दास ही है और नहुँ प्रिया-मिलन कामना से उत्साहित प्रेमी शासक। अत: ‘अरोही अधीर हुआ प्रेमण से मार की’ फल स्वरूप वह शाप-प्रस्त हो गया। पतन काल में गुस्सी का नहुँ अधिक तेजोदस हो उठा है। वह शाप को अंगीकार करता है। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह के रहते हुए भी आँगे बढ़ते का चित्रण करता है। वह श्रमाप्राधी है, भूल पर खेड प्रकट करता है, पश्चाताप करता है। उसने जिस पीरुष से स्वर्ग को जूझ कर दिया है वही पीरुष उसे ‘अपनत्र’ प्राप्त करने में समर्थ है, अत: पीरुषमय नहुँ का विश्वास है–

“गिरना क्या उसका उठ दी ही नहीं जो कर्मी?
मै ही तो उठा था आप, गिरता हूँ जो अभी।
फिर भी उठाया और बढ़के रहूँगा मैं, / नर हूँ, पुरुष हूँ मैं, चढ़के रहूँगा मैं।”

इस प्रकार निष्कर्ष यह है कि नहुँ के चरित्र के माध्यम से कवि ने पुरुष के पुरुषार्थ, उसकी चारित्रिक बदुदता, मानव के उत्थान-पतन की प्रक्रिया और मानव की कर्म-शास्त्र का जयगान करना चाहता थे, जिसमें वे पूरी तरह सफल हुए हैं।

• शाची

देवराज इंद्र की पत्नी तथा पुलोमा देवी की पुत्री का नाम शाची था। इनके पुत्र का नाम नायंत्र और पुत्री का नायंत्री था। पोजस शास्त्रियों में से इन्हें एक शक्ति माना जाता है। गुस्सी के काव्य में शाची का चित्रण मुख्यत: नहुँ में हुआ है। ‘नहुँ’ की शाची इंद्र की पत्नी होते हुए भी मानवीय संवेदनाओं से पूरित है। गुस्सी की शाची इंद्र के अभाव में शोकाकुल है। ‘शाची’ सर्ग में उसके चरित्र में कवि ने भारत लश्मी की कल्पना की है। फिर नवयोगी शाची विचारशीला और शाकातु प्रवृत्ति की है। उसके मत में पव में सदीव एक मद रहता है। वह वाक्यों से साधारण रह सकती है और मनुष्यों के प्रति शांकित है यथा–

“देव सवा देव तथा हतु दनुज है; / ना सकते किंतु तोनों और ही मनुज है।”

279
वह शक्ति रूपा, साहसी, आत्म-गौरव से गाढ़ा है। ‘संवेश’ शीर्षक में शरी का सतीत्व, तेजस्विता और तारकिकता का आयाम है। ‘मंत्रणा’ शीर्षक में शरी तारकिक तो है ही, वह आवरण और व्यवहार में पेशिमंड़क की समाना है। इस सर्ग में उसकी उदारता और त्याग के भी दर्शन होते हैं। इस सर्ग में वह स्वयं ही सुझाव देते हैं कि कृपण कहु च ये पालकी उठकर ले गए। इस प्रकार नहु धार्मिक कथा की शरी के चरित्र में कवि ने मानवीय गुणों और दुर्भितता दोनों को विख्यान का प्रयत्न किया है।

‘नहु’ कथा में नारद, उद्योगी, बृहस्पति, कुबेर और वरुण अन्य पात्र है, जिनका प्रासंगिक महत्व है। कवि ने उनके चरित्र को विस्तार से चित्रित नहीं किया, बल्कि वे प्रासंगिक रूप में कथा में आए हैं।

4.5.१२.२ भाव-व्यज्ञना

इसमें इंद्राणी का करण विप्रतंय तथा नहु के उत्साह, मोद, मोह, क्रोध, विशाद आदि मनोभाव व्यंजित हुए हैं। अतः उपासना लिखते हैं— ‘नहु में करण का अच्छा परिपाक हुआ है—संपूर्ण कार्य को करण का आदर्श आवरण पड़ा हुआ है। करण के अतिरिक्त रूढ़िवाद और रीढ़ का स्पर्श भी सहज उपलब्ध है।’

नहु कथा की विशेषता यह है कि वह भावना को एक संदेश देता है, वह यह कि मनुष्य को प्रभु पाने पर, मानसिक संतुलन नहीं खोना चाहिए और उसमें अनधिकृत कार्यों के करने की भावना नहीं आनी चाहिए, अन्यथा नहु के समान तत्त्व आवश्यक है। मनुष्य अपने कृत्यों से ही उपर उठता है और कृत्यों से ही गिर जाता है।

मनुष्य जीवन में प्रगति तथा अपरगति संभव होती है तभी तो कवि कहते हैं— ‘नारायण नारायण ! धन्य नर-साधना।’

संस्कृत में नहुए एक मानवतावृद्धि चारित्र-प्रथान खंडकाव्य है जिसमें कवि ने नारी का सतीत्व, पुरुष की उत्साह-चेतना और अपनी राज्य-भावना को अभिव्यक्त किया है।

4.5.१४ कुणलाल-गीत (सन १९४४ ई.)

कवि गृहजी को यशोधरा की रचना करने के उपरांत सन १९३५ के आस-पास किसी सुरवास को गाते देखकर ‘कुणलाल-गीत’ लिखने की सुझ थी।

उन्होंने सन १९४५ में खौसी जेल में तो-चार गीत रचे। उसी वर्ष आगरा जेल में चालिस-पचाश प्रगति रचे और निपक्ति पाने के उपरांत चिरगाँव आकर उसकी रचना पूर्ण की। आत्माभव्यतिः के रूप में कुणलाल-गीत में पचास गीत हैं। वह काव्य गीतिशीली में होने के कारण कतिपय विख्यात इसे
गीति-काव्य की श्रेणी में रखते हैं तो कुछ मुक्तक की कोटि में रखते हैं। डॉ. कमलाकांत पाठक इसे गीतिकाव्य मानते हुए लिखते हैं- "कुणाल-गीत के गृहीत जीवन-वर्णन की मानवतावादी विचारणा का और उनके प्रीड़ जीवनवाचक का पूर्ण विकास दिखाई पड़ता है। इसमें भावुकता की अपेक्षा वास्तविकता का, बुझितत्त्व का प्रादेशिक है। कुणाल का आदर्श चरित्र और उसकी जीवनोत्स्वात की विषयवक्ता कल्पना कुणाल-गीत के प्रगतिः-सौच से निर्माण का मूलधार है। साकेत और यशोधरा की गीति-परंपरा यहाँ कथात्मक प्रतिवंत्यों का सर्वांग से सर्वस्तर कर केवल गीति-परिच्छेद में प्रंशु हुई है।" 249 दूसरी ओर डॉ. झारिका प्रसाद सबसे प्राकृतिक मुक्तक वातावरण मानते हैं। उनका मंत्व है- "सन 1942 में गुरुजी का ‘कुणाल-गीत’ नामक काल्पनिक प्रकाशित हुआ। यह काव्य समाधार अशोक के पुत्र कुणाल की लोक-प्रचलित कथा पर आधारित है, उसमें ७५ गीत हैं, जो मुक्तक शैली में लिखे गये हैं, फिर भी उसमें एक सहज सुत्र विधाम है। इसी कारण यह काव्य भी प्रबंधात्मक मुक्तक की कोटि में आता है।" 250 दूसरा उमाकांत ‘कुणाल-गीत’ का प्रगतिः-सौच खंड काव्य मानते हुए लिखते हैं- "कुणाल-गीत का प्रतिपाद भारतवर्धन की एक लोक-प्रचलित कथा है। कथानक के प्रयास: सब भी गुरु इसमें विधाम हैं। कुणाल-गीत की कथा पर्याप्त रोचक और प्रकट है अतः साधारणकरण में सर्वांग समर्थ है। किन्तु इसकी कथा-कोटि विवाहार्य है- एक ओर तो यह अपने आप में पूर्ण ८५ गीतों का संकलन है, दूसरी ओर इन गीतों में पूर्वांग संबंध का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। हमारी विराम समस्तिमें कुणाल-गीत एक प्रगतिः-सौच खंड काव्य है।" 251 इस प्रकार इसे बुढ़ कालीन इतिहास पर आधारित गीतात्मक खंड काव्य कहना अधिक समीचीन है। क्योंकि इसमें भले ही गीति-शैली अपनायी गयी हो परंतु कथा-सूत्र अखंड है। यह परंपरागत शैली के खंड काव्यों की अपेक्षा नई शैली का खंड काव्य है, जिसमें दो विरोधी तत्वों के समन्वय का प्रयास किया गया है। इस कृति की रचना के लिए सामग्री अशोक कालीन इतिहास से लिए गई है। धर्ममान्ती कोसास्त्री के गुंंथ विशेषता: ‘भारतीय संस्कृति और अर्हिता’, ‘भगवान बुढ़’ तथा कुमार स्वामी की ‘हिंदू-वर्णन और बौद्ध-वर्णन’ पूर्वों से सामग्री ली गयी है। ।।५.१५.१ कथा-वार

कुणाल देवान्त्र प्रयोग समारोह अशोक का प्रथम पुत्र या। तन तत्त्व मनोनयों में वह अप्रतिम था। सीमा प्रांत में शिवीर खड़ा होने के कारण समारोह अशोक कुणाल को ही उस राजनीतिक विशेषज्ञ को शास्त्र करने के लिए वहाँ भेजते हैं। उसकी सहभागिता काव्यरचनात्मक भी उसके साथ गई। कुणाल की बलबुद्धि के फलस्वरूप “तथाकथित विशेष यहाँ का हुआ सहज ही शांत” 252 किंतु इस उपलब्धि पर उसे कोई पुरस्कार न मिलकर अप्रत्याशित बंद ही पास होता
है। कुणाल के रूप पर सिद्ध कर सकता उसकी विभाजित ध्यान-विधिक अपने निर्देश मनोरथ में विफल रहकर यह राजावेद जारी करा देती है कि ‘कुणाल को अथवा करके निदातित कर दिया जाए।’ कुणाल माँ बाँझ दिया गया यह अनुमति आदेश विरोधित कर लेता है, क्योंकि वह जानता है जैसे अनलाग है और प्रभाव है इस्तेमाल-श्रेष्ठ बिकार।”

कुणाल को नेत्रीय तथा निदाततित कर दिया जाता है। अशोक का जीवन धन उनसे छिन जाता है, उनका ‘‘सुंदर उसने विदा हो जाता है और उनके पास प्राप्तिक से अतिक्षित और कुछ शेष नहीं रहता। स्वयं कुणाल इस नेत्रातन्त्र को व्यवसाय ही मानता है। वह इसे मूलधन की वृद्धि का एक नियंत्रित उपाय समझता है क्योंकि उसकी मान्यता है कि ‘आज जो दे जायेंगे हम, कल प्राप्ति पायेंगे हम’।”

उसका कहना है कि अपने आराध्य को अंध-भाव से ठो轧ना अब उनके लिए संबंध हो गया है। कुणाल अंधा होने पर पत्री कांचनमाला के साथ तीर्थ पर की निकल पड़ता है। वह मिश्रुक के रूप में ग्राम-ग्राम तथा नगर-नगर जाता है। पर्यटन करता हुआ एक दिन अनजाने ही पत्री के साथ पाटलिपुत्र जा पहुंचता है। रात के अधिकांश में उसके गीत की ध्वनि से खिचकर पिता अशोक महल से निकलकर उसके पास आते हैं। पिता के पूर्ण से पूर्ण को पून: दृष्टिलाभ होता है। उसके दृढ़-मंद्र दीप की भावति जाग जाते हैं और ‘निज जन-नगर निवास’ के दृश्य उसे पून: दृष्टिगत होने लगते हैं। कुणाल के अनुरोध से विभाजित का अपराध धमा हुआ। वह पिता से यही विवाद करता है- ‘माँ को संयम करे ये बस अन, पूरे मेरी आस।’

इस प्रकार दृष्टि लाभ के रूप में पून: नवनीवन पाकर कुणाल अपना मनुष्यकाय बहुजन-हिताय, बहुजन सुखाय समर्पित कर देता है।

4.5.14.2 पात्र-योजना

‘कुणाल-गीत’ में पात्रों की संख्या कम है। कुणाल इसका नायक है। वह मानवता का आदर्श प्रस्तुत करने वाला चरित्र है। डॉ. उमकांत के शब्दों में- ‘प्रस्तुत काव्य में कुणाल के महान यज्ञसित्व का विशेष महत्व है। लोक-प्रसिद्ध सचिवहर व्यक्ति में लोक-मांगल्य एवं आशीर्वाद की प्रतिष्ठा करके कवि ने उसे और भी निखृत दिया है।”

उसके आदर्शवादी चरित्र पर प्रकाश डालते हुए डॉ. कमलांकन भी लिखते हैं- ‘कुणाल का यज्ञसित्व महान है, पर वह मानवतावर्धन का आत्मोन्मुख और विरित-पूर्ण स्वरूप मात्र है।’

कुणाल के चरित्र के मुख्य पहलू इस प्रकार है-

कुणाल कलिंग-विदेश तथा विशिष्ट विक्रम समार अशोक का प्रथम सुपुष्प है। दया, प्रेम, सहिष्णुता तथा विश्व शांति की निधियाँ उसे पैदा-संपत्ति के रूप में प्राप्त हैं। कांपांच
विमाता तत्त्वावलीत कुक्क होकर कुणाल की आँखें निकलवा लेती है। अवश पिता उस अनुचित आवेश पर अपनी राजमुः प्रकाश होकर जाने देते हैं। कुणाल नेत्रोषाने होकर जाने पर भी अपने को बाधत या बांधत नहीं मानता। तृष्णितिहास होकर तो मानो उसे एक विशेष ‘तृणी’ प्राप्त हो गयी है। वह चाहता है कि उसकी वह प्रेमांच मां, जिसने उसे अपनी आँखों के ज्योतिमय से विशोष कर दिया है अब इस विश्व को उसकी आँखों से देख। तब उसे यह सृष्टि कुछ-कुछ विखाई देने लगेगी। तृष्णितिहास होकर स्वयं कुणाल के तृष्णिकोण में अभूतपूर्व परिवर्तन आ गया है। वह अपने जिन नेत्रों से लोक-सौंदर्य सृष्टि देखकर कृतार्थ हो चुका है, उन्हीं से अब संस्त्रृति पर अमृत-तृणित करना चाहता है। यथा-

“अवनोक लोक-सौंदर्य-सृष्टि, हो गई कृतार्थ कुणाल-तृणि।
सब संस्त्रृति पर हो अमृत-तृणि।” ॥१३६॥

कुणाल ने अपने जीवन में जो लोकिक वैभव प्राप्त किया नित्य निरंतर वह नव-नव था। उसे माँ की ममता, तात-तितिक्ता, पूर्ण गुरूजनों की शुष्क शिक्षा, मित्र-मंडली के विद्या और प्रिया का प्यार भपुरु मात्रा में प्राप्त हुआ। उसने स्वयं दिवस और चोटों की रातों में सुँचवर्धन कानुओं के समय विहार किये किंतु उसके जीवन में एक ऐसा अवस्था उपस्थित हो गया जब ‘बाहर मुझे न दिखे कुछ भी, भीतर सब कुछ है सूझ रहा।’ इसलिए अब वह यही कहता है-

“मैं भीतर ही देखूँ-भालूं, अंध-सिंधु के रन निकालूँ,
वहीं अमृत-भागी है मेरा, जो निज विष से है जूझ रहा।
मैं नई पहेली बुझ रहा।” ॥१३९॥

इस पुष्पपथ पर उसकी सत्तामिति कांचमाला उसके साथ है। कुणाल अंधा होकर भी यह देख पा रहा है कि, उसकी दीन दशा देखकर कांचमाला निरंतर रो रही है। कुणाल उसे सांतवना देता है-

“प्रिये ! आज तो त्याग दिया है,/सुख ही नहीं, दुःख भी बस है ... लोक नाथ, परतोक खड़ा है,/चलो सींचती-बोती।” ॥१५६॥

कांचमाला कल तक कुणाल की अनुगमिति थी आज अनुगमिति है। डॉ. कलाकार के शब्दों में- “कांचमाला प्रत्येक परिस्थिति में कुणाल की सहानुभूति-शीला संगमिनी बनी रही। वह स्वयं मीन है, पर वही कुणाल की शक्ति, अंधे की लकड़ी, उसकी सहायत्वी और प्रेम पत्नी है। उसका अचल नारीलिक गीतकपूर्ण है।” ॥१३५॥ कांचमाला अंधे की लाली है। आज
पण कुणाल के हैं और मन कांचनमाला का। उसकी चिरयायित्रिनी में आज अवधुत जगमण हो
रही है। कुणाल मिठुक होकर भी आज अपने की राजा ही मानता है क्योंकि उसे कांचनमाला-
सी रानी प्राप्त है। उसके भ्रमणशील जीवन को आज कहीं किसी प्रकार का कोई भय नहीं है
क्योंकि-

“सचमुच ही तुम छाया मेरी, कितनी शीतल, सच्चे अंधेरी...
देखुँगा अब देवी, तुम्हारी आँखों से सब सूक्ष्ट्त।”\(^{190}\)

कुणाल नगररोय जीवन की जड़ नागरिकता से सरल, सहज ग्राम-जीवन को अधिक प्रतिकर मानता है। इसीलिए वह श्रम के बीत से श्रमिक दुःख दुःखित द्वारा ग्राम तथा पुर के
बीच वाली एक ‘निराली संस्कृति’ की स्थापना करना चाहता है। कुणाल संहार नहीं, सुनक न का
आकाश नहीं, हिस्सा का नहीं, अहिस्सा का अनुरोध है। वह मानता है कि बाण में फूटने वाली
किरण रस नहीं रूपरेखा ही पीती है। इसीलिए सजावटियों से उसका अनुरोध है-

“मनुष्य, जलाओ न वह नरक की, ज्वाला इस परिमाण में,
बुझा सकें न तुम्हारे आँख़ू, जिसे लोक-कल्याण में।”\(^{191}\)

उसे यह देखकर मलान है कि मनुष्य शान-बल से प्राप्त विजय पर गर्व कर रहा है।
लेकिन कुणाल यही मानता है- “मेली-करुणा में कल्याण, विश्व-वंभुता में भी आण।”\(^{192}\)
इसीलिए पुनः सूक्ष्ट्त-लाभ हो जाने पर वह लोकिक सुख-संपत्त के प्रति प्रवृत्त नहीं होता,
उसका तो यही संकल्प है-

“चोड़े मैंने सब राज-पाट, मैं नहीं चाहता ठाठ-बाट।
पूर्ण अव घर-घर, पाट-पाट, हूँ सुमात-निरा का दिव्य दाय,
बड़ुक-हिताय, बड़ुक-सुखाय।”\(^{193}\)

4.5.14.2 भाव-व्यंजना

रस परिपाक इस काव्य में उचित मात्रा में नहीं हो पाया, यद्यपि इसमें करुण का सोत
प्रवाहित किया जा सकता था। कुछ विद्वान इसे करुण-रस प्रभाव कृति मानते हैं, लेकिन डा.
कमराकांत पाठक के अनुसार इस काव्य में शांत रस का नियोजन हुआ है। उसका मंतव्य है-
“कुणाल-गीत का प्रमुख तत्त्व लोकनिष्ठ आध्यात्मिकता है अथवा मानवता का अनुभूत
आचारिक दर्शन है, अतः इसकी भावधारा श्रम या निवेदनमयी है।”\(^{194}\) विरोधियों के प्रति प्रेम-
भाव रखना और प्रत्येक परिस्थिति का गुण-दर्शन करना कुणाल की प्रमुख प्रकृति है। अंधा
होने पर वह अंतर्मुख हो गया है, पर उसका लक्ष्य लोक कल्याण ही रहा है। उसकी स्वेच्छाशीलता मानवता को उद्दार्थता के साथ-साथ यदि वर्ध्मान होती तो वह मनोविश्वासिक सत्य अधिक होता। वह प्रत्येक वस्तु, घटना या व्यवस्था का सत्य स्वरूप ही देखता है और संस्तों का साधन-मार्ग अपनाता है। उसकी अत्यधिक बहिष्कार सापेक्ष है तथा आत्मसंतोष और लोकार्थ की उसकी संपादित एकता तयारता के अध्यात्म मार्ग की परम सिद्धि है। वह गृहस्थ संत है।

यथा—

“चलता हूँ मे मांधा होकर आज तथागत के पथ पर।”१९३

“पाऊँ सब की प्रेम-वृद्धि में, दूँ सबको विख्यात।”१९४

आदि प्रजीत इसी अध्यात्मिकमुखी प्रकृति के निदर्शन है। पथ-वैतों में अनेक स्थल आए है जहाँ उपाय का संघट पल्ली-प्रेम पक्रत हुआ है। ग्राम-वास के प्रसंग में कल्पन प्रकृति-चित्र अंजित किए गए हैं, पर कवि की प्रेम जितनी जीवन व्यापारों में स्थी हैं, उतनी प्रकृति का रणनीतियाता में नहीं। यदि दार्शनिकता प्रधान न हो उतनी तो प्राकृतिक रूप-व्यापारों के चित्रण में तत्त्वविद्या पक्रत हो पाती। घर्म, युद्ध, समाज तथा राजनीति विश्वस्थ आदर्शो का कवि ने परमाशिशेषण किया है। डा. ढार्का प्रसाद मितल का कथन है— “इसमें करुणा और अहिंसा के माध्यम से सामाजिक कर्तव्य का पालन तथा विश्वबंधुत्व की भावना का आचरण दिखाया गया है। इसमें कवि ने निवृत्ति मार्ग का उपदेश न देकर आत्मशुद्धि की बात कही है—

“मैं भीतर ही देखूँ भालू, अंध-सिंधु के रन निकालूँ।

बही अमृत भागा है मेरा, जो निज विष से है जूझ रहा।”१९५

कवि ने इस प्रकार मानवता के शाश्वत आदर्श को अभिव्यक्त करके सामाजिक-क्रिया की वृद्धि करने का संदेश दिया है जिसमें समाज में लोक-हित होता है। गुरुंजी के गाँधी-दर्शन का मानवतावाद बोध संस्कृति के मूलभूत तत्त्वों से समृद्ध हुआ है। इस कृति में शांत रस का सफल निर्विन्य हुआ है।”१९६

१५.५.१५ काव्या और कर्मला (सन् १९४२ ई.)

‘काव्या और कर्मला’ में ‘काव्या’ और ‘कर्मला’ शीर्षक से दो सह संबंध खंडकाव्य संप्रकट्न हैं, जिसका प्रकाशन सन् १९४२ में हुआ था। यह खंडकाव्य मुस्लिम इतिहास से संबंध है। इसके प्रमाण के उद्देश्य के संबंध में गुरुंजी का कथन है— “अपने देश में आंतरिक सुख-शांति के लिए हमको हिलमिल कर ही रहना होगा। समान दुख ही हमारी पारस्परिक सहानुभूति का आधार नहीं होना चाहिए। यह तो एक विश्वास का विषय है। हमें एक दूसरे के प्रति उद्दार और सहिष्णु होना होगा, एक दूसरे से परिचय और प्रेम बढ़ाना होगा। हमारी मैत्री
भावना ‘प्रेम एवं परोपकार’ पर ही प्रतिविधित हो सकती है।’\textsuperscript{166} २२ अप्रैल १९७१ को श्री एम्री ने कामन सभा के अपने भाषण में इस बात पर जोर दिया था कि भारत के राजनीतिक वर्गों को आपस में समझौता कर लेना चाहिए। तब गांधीजी ने इस का उत्तर देते हुए कहा था—

“आखिर ब्रिटेन के राजनीतिक यह बात क्यों नहीं मान लेते कि यह भारत का घरेलू मामला है? वे भारत से एक बार हट जाएं तो मैं वापसी करता हूं कि कांग्रेस लौट और इस देश के दूसरे सभी वल यह अनुभव करने लगेंगे कि सबका भाना इसी में है कि हम सब आपस में मिल जाएं।’\textsuperscript{167} कवि ने इसी राष्ट्रीय समस्ता से प्रेमित होकर इस्लाम के धार्मिक तथा सांस्कृतिक इतिहास का अनुसंधान किया है। इन बायां के लिखने का उद्देश्य हिंदू-मुस्लिम एकता की भावना को पुष्ट करना है। डॉ. नवीन कुंद्र सहजगल का मंतव्य भी प्रस्तुत है—“वे कृतियाँ इस अवधारणा पर आधारित हैं कि मूलतः सब धर्मों के एक ही उद्देश्य होते हैं और उनके प्रवर्तक अपनी विशेषता रखते हैं। भारत में हिंदू और मुस्लिमों के चिकित्सकीय सहायता के कारण यह आवश्यकता ही नहीं, अपरिहार्य ही हो गया है कि हमें एक दूसरे के प्रति उदार और सहिष्णु होना होगा, एक दूसरे से परिचय और प्रेम बढ़ाना होगा। हमारी भैतिक भावना प्रेम एवं परोपकार पर ही प्रतिविधित हो सकती है। इसीलिए वैणन कवि ने काबा और कर्मला की रचना को एक ‘वात्ता’ की संख्या दी है।’\textsuperscript{168} इस प्रकार ‘काबा और कर्मला’ के प्रणयण द्वारा गुरुजी ने एक और आक्रों लोगों (हिंदुओ) को इस्लामविश्वास क्रांति कारणों से मुक्त करने का प्रयत्न किया है और दूसरों और स्वयं मुस्लिमान भाईयों को भी अंधकार मुक्त करके इस तत्व से अवगत कराना चाहिए है कि उच्चता, उदारता और विचारणा के प्रतीक हजार मुहम्मद के चीवे खलीफा हजार अली के पुत्र हजारुद्दीन, उनके परिजन तथा अनुयायियों ने कर्मला में हुए धर्म युद्ध में वैश्वतिक पाकर बलिदान के अक्षर भीतिमान स्थापित करने का जो विश्वविश्वास कार्य संपन्न किया उसमें अनेक आर्थिक भी उनके साथ थे। इस प्रकार अलग तथा मुस्लिमों का पारस्परिक सहारा तथा भाईचारा ही इस रचनाओं का मूल प्रतिपाद है। संस्कृति में, गुरुजी ने मानवता की आत्मात्म भावना को इस सामाजिक प्रेरणा से रचित लघु एवं महत दिलचस्प रमण के मूल प्रतिपाद है। संस्कृति में, मानवता की उद्देश्य भावना को इस सामाजिक प्रेरणा से दुर्विद्यम रचित कवियों ने अर्थात् व्यापक मानव-धर्म की प्रतिष्ठा का संरक्षण किया है। इससे तात्कालिक समस्ता की कवि ने नहीं रखा बल्कि राष्ट्रवादी चित्रण को ही मानवतावादी दार्शनिकता में पर्यवेक्षित किया है। इस रचना के उद्देश्य सर्व-धर्म सम्बन्ध है। \textsuperscript{169}

\textbf{वर्ष-विवेचन}

इस काव्य को दो ख़ंडों में रचा गया है। प्रथम ख़ंड में काबा विश्वकर्मा रजत आश्वानक रचनाएँ हैं, जिसके पश्चात् दूसरे में इकट्ठास कविताएँ संग्रहित हैं। इन मनोकां को एक माला में
पिरोने बाला सूत्र यहाँ है कि इन सबका संबंध हजरत मुहम्मद, उनके संबंधित अथवा अनुपालियों के साथ है। अर्थात् इस्लाम के धार्मिक इतिहास की क्रमबद्धता इसमें रखी गई है तथा मुहम्मद साहब के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं को पध-बढ़ किया गया है। प्रत्येक रचना में किसी धार्मिक तत्त्व का वास्तविक आर्थिक भी हुआ है, जैसे ‘प्रति०शोध’ में कवि ने घात करनेवालों को शक्ति कर देने में ही शील का उत्कर्ष समझा है। इस काव्य का पूर्व रंग अर्थवर्धन स्थ्री-पुरुष का वातावरण है। मुहम्मद साहब के जीवन-प्रसंगों पर कवि ने उन्नीस प्रकीण रचनाएं लिखी हैं। कवि ने मुहम्मद साहब की महानता, सहस्रशैली, धीरता और उदयता का निरुपण किया है। उसका कार्य धर्म-संस्थापक का शीलोत्कर्ष विखाना तथा इस्लाम के सर्व-धर्म-सम्मत तत्त्वों का उद्धारण करना रहा है।

इस खंडकाय्य का उत्तरांश ‘कर्मचा’ वीर-करण रस प्रधान है और उसमें मुहम्मद साहब के नाटी ज्ञाथ हुसैन के बलिवाद का आर्थिक वर्णित है। इसमें हजरत मुहम्मद के उत्तराधिकारियों में उस उठने वाले गुहवादी कलह का निरुपण है। मुहम्मद के प्रतिनिधि अबूबक्र अंत में स्वयं उपजोको लोक और गुणधर उपर लोक में अतुल जपकीर्ति अर्नित करते हैं। एक बच्च रिपु उपर की हत्या कर देता है। तत्वात्त्विक उससम के खलीफा बनते हैं। पर वे भी सबके विश्वास पर नहीं बनते। अध अली अनि चापुर्क खिलाफत भार अंगीकार करते हैं। किंतु उससम के पषाधर यह मान बैठते हैं कि उनकी हत्या में अली का धा है। उपर, सामान्य मुआविया अली को खलीफा घोषित कर देता है जिसके परिणाम स्वरूप ‘चला महा गुहवाद, जहाँ तहराकर शोणित।’ अली बली होने पर भी प्रकृ:त्यः सरल थे। अली के पुत्र हसन मुआविया के साथ संघ कर लेते हैं। मुआविया, इस संघ के विपीलत अपने पुत्र को अपना खलीफा बना देता है। कुफा के नगरवासी इसका तीव्र विरोध करते हैं। वे ठीक भेजकर हदपुर्क अली के पुत्र हुसैन को वहाँ बुलाते हैं और उन्हें यह विश्वास दिलाते हैं कि ‘हम यज्ञि की नहीं आपको ही मानेंगे।’ हुसैन सड़कुद्वन वहाँ जाते हैं। उपर धन का लोभ कुफा निवासियों को यज्ञिक का समर्थक बना देता है। हुसैन शायद तथा विश्वासियों से धर जाते हैं। कर्मचा के स्वाधीन नर्म नया निश्चय होता है। हुसैन के संगी-साथियों की फरार नवी के पासी तक से बंचित कर दिया जाता है। हुसैन अपने साथियों को परमार्थ वेत्ते हैं कि वे जीवन रखा के लिए चले जाएं।

हुसैन के सभी कस्बुंबी के एक-एक कर वीरति को प्राप्त हो गए और बाल-बुढ़ तक कोई कुटिली शेष नहीं बचा। हुसैन का एकमात्र साथी-उनका अस्मान नाम का थोड़ा भी बाकी बच रहा था। उसने तस्वीरों को रेकर्ड हुसैन की नदीतट तक पहुँचा दिया और चाहा कि वह पानी पी
लें। ‘सब प्यासे ही गए, पियूं में ही फिर क्यों कर’ ? यह सोचकर हुसैन ने पानी नहीं पिया और उनके स्वामीभक्त प्रोड़े ने भी रवि घल गया और हुसैन का जानवल्मान जीवन-सूर्य भी सवास के लिए वहीं अस्त हो गया।

4.5.15.2 पात्र तथा चर्चा

‘काबा और कर्भना’ में कवि ने कुल मिलाकर एक दर्जन छोटे-मोटे पात्रों की योजना की है। इनमें हजरत मुहम्मद और हुसैन प्रमुख पात्र है। तो अल्लाह, अब्बूक्र, अली, उमर १-२, उस्मान, फतीमा, मुआविया, मुसलिम, यजीद, हुर आदि गौरे पात्र है, जिनका प्रसंगानुसार कवि ने उल्लेख किया है। यहाँ प्रमुख पात्रों का परिचय संक्षेप में प्रस्तुत है।

• हजरत मुहम्मद

हजरत मुहम्मद इस्लाम के प्रवर्तक हैं। ‘काबा और कर्भना’ में कवि के शब्दों में—

“हजरत मुहम्मद जैसे महान थे, वैसे ही उदार, वैसे उच्च वैसी ही बिनम्।” इस्लाम धर्म में उनकी प्रस्तावना और अल्लाह का पैगंबर माना है। वे अल्लाह का सेवा लाने वाले हैं। प्रसिद्ध काबा धाम के नवनिर्मण के अवसर पर इस प्रसंग को लेकर अयोध्या में परस्पर झगड़ा उठा खड़ा हुआ कि परम पावन अवसर पर पापाशान को कौन प्रतिज्ञित करें प्रत्येक व्यक्ति अपना-अपना बड़ून बता कर अपना अधिकार जता रहा था। मुहम्मद ने यह युक्ति सुझाकर उन्हें संकट मुक्त किया—

“प्रमु समह सोचो टुक मौन, बड़ा कौन, छोटा है कौन?
तने न भीह, न खिचे कमान, उसके जन हम सभी समान।
बीर, बिखाओ बीर, बिखेक, बिछा बड़ी-सी चादर एक,
रख उस पर पावन पापाशान, सभी उठाओ, पाओ उफान।”

पारस्परिक समाज, सहयोग तथा सद्भाव हजरत मुहम्मद के जीवन-वर्तन का मूलमंत्र था। एक विन किसी ने उन्हें एक ताल उत्साह कर दिया। उन्हें वह उचित नहीं लगा। उन्होंने प्रेमपूर्वक उस वास का हाथ धारण कर यह कहा—

“किसी वर्ग के और किसी भी देश के, बंघु सभी हम दास एक अखिलेश के।
रहो न अब से तात, हीन या दीन तुम, मेरे जैसे हुए आज स्वास्थ्य तुम।”,

अपनी इस विशेषता के बल पर ही हजरत मुहम्मद ने बिना मूल्य मित्रों को ही नहीं, श्रद्धा को भी क्रान्ति कर लिया था।

288
जानलेवा के उपरांत हजरत मुहम्मद ने उसके प्रचार का निश्चय किया। इस कार्य का शुभारंभ उन्होंने अपने परिवार से ही किया। सहारमिया खतीजा को पहले से ही यह विचार था 'पाओगे, विस्वस्त रहो।' अतः वह तो नभी से अविभिन्न थी ही, उनके चचेरे भाई अली उनके सर्वप्रथम विश्वासी बने। अपने धार्मिक अभियान में हजरत मुहम्मद को प्रबल विरोधियों का सामना करना पड़ा। मुहम्मद ने परंपरागत विचारों को चुनौती दी थी। अतः उनके निज जन-जनपद पर अरब भी उनके विरोधी हो गये और कोई वैश्विकी तो उनकी हत्या तक के लिए कठिनख़ा हो गये। प्रभु के कार्य हेतु जीवन-रस्क के लिए मुहम्मद को जननी जनमभूमि मक्का का परित्याग कर मर्दीना चले जाना पड़ा। शाहुओं ने वहाँ भी उनका पीछा किया और उन्हें और उनके अनुयायियों को चौंच से न बेठने दिया। तथापि हजरत ने शाहुओं के प्रति भी अधिकतम उदारता का ही परियोजना किया। यहूदियों ने मुहम्मद के साथ वेर बनाये रखा। मुहम्मद की मान्यताओं के कारण उनकी पूरी जनता को भवस्वर के घर में अनेक कम्प सहने पड़े और घर तथा वर दोनों से ही बंचित होना पड़ा। पिता मुहम्मद ने अभी तक होकर यही कहा-

"जो संभव सुनाने आते, पहले उत्प्रेरित ही पाते,
पर क्या वे इससे भय खाते ? कहते कहते हुत हो जाते।" 199

हजरत मुहम्मद दूसरों को बहुत कुछ देने आए थे। पत्नी आयशा ने इस अविचक घनी को पाकर न जाने क्या-क्या पाला था। 'काब्रा और करबला' के मुहम्मद अधिक विनियम हैं वे हठधमी नहीं है। गुरुजी ने मुहम्मद के बदारा कहलाई गयी पंक्तियाँ व्रतत्व हैं-

"यह सदा संसार है उस प्रभु का परिवार।/सबसे रक्षा चाहिए, प्रेम पूर्ण व्यवहार।।
यही ईश्वरपासना यही धर्म का मर्म।/एक दूसरे के लिए करें यहाँ सब कर्म।।
मनुष मात्र के अर्थ जो करते हैं उपयोग।/सच्चे जन भविष्य के हैं बस वे ही लोग।।" 195

• हुसैन

हुसैन हजरत मुहम्मद के जानाता अली के पुत्र और हसन के छोटे भाई थे। हजरत मुहम्मद के तीसरे खतीफ़ा उस्मान के बाद अली को सब मुसलमानों ने खतीफा बनाया परंतु सीरिया के अभी मुआविया ने उन्हें खतीफा मानने से इनकार कर दिया। और अपने प्रांत में ख़ब अपनी खिलाफत का ऐलान कर दिया। अली के देहात के बाद मुसलमानों ने अली के बड़े पुत्र हसन को खतीफा बनाया था। मुआविया ने उनके साथ लड़ाई ठान ली। परंतु हसन अपने पिता से अधिक विरक्त थे। वह किसी भी भांति अपनों के अपपाठी बनने के लिए तैयार नहीं हुए। उन्होंने मुआविया से संपूर्ण लिया। मुआविया ने उन्हें यह वचन दिया--
“यह जैसा कुछ हुआ, उसे रहने दो बेसा।
में निज सुत को नहीं, दिखाये तुम को हूंगा,
होगा नहीं यजीव, खलीफा में ही हूंगा।”

मुआविया ने अपने वचन का पालन नहीं किया और अपने पुत्र यजीव को अपना उत्तराधिकारी बना दिया। हुसैन अयोग्य यजीव को खलीफा मानने के लिए तैयार नहीं थे।
कुफा नवाबी भी यजीव को अपना शासक नहीं मानते थे। उन्होंने यह संदेश हुसैन के पास भेजा।
“हम यजीव को नहीं, आप को ही मानेंगे, / और आपके लिए मरण जीवन जानेंगे।”

यह संदेश पाकर हुसैन धर्म-संकट में पड़ जाते हैं कि वह कुफा जाए या न जाए। अंत में वह वहीं जाने का निश्चय करते हैं। कुफा पहुँचने पर उनका स्वागत नहीं होता बहर तो उनका सामना करने के लिए हुए नामक चुरु सेनानायक के नेतृत्व में एक हजार सैनिक सन्न दिखाई पड़ते हैं। हुसैन को वापस लौटने की कहात है, किंतु हुसैन ने यह स्वीकार नहीं किया।

कब्रला क्षेत्र में दोनों शक्तियों का भीषण मुकबरा हुआ। विपक्षियों ने फरात नदी पर प्रहरी बेठा दिया था, ताकि हुसैन के संगी-साथियों को पानी की एक बूढ़ भी सुलभ न हो सके। हुसैन अपने आत्मीयों तथा अनुयायियों को धर्म यज्ञ में बल देखना देखते हैं। हुसैन का एकमात्र साधी-असगर घोड़ा सेनानायक को चरित्रा हुआ उन्हें फरात नदी के तटपर पहुँचा देता है। किंतु हुसैन पानी की एक बूढ़ गहराई करना भी स्वीकार नहीं करते और घटुखल से चिंतकर अपने प्राणों की आहुति ढाल देते हैं।

4.५.१५.२ भाव-व्यंजना

‘काब्रा और कब्रला’ में रस-परिपक्व प्रायः नहीं हो पाया है। रस क्षीणता का कारण सिद्धांत विवेचन है। फिर भी कब्रला की करुणा कलित कहानी में करुण के कुछ उदाहरण प्राप्त हो जाते हैं। दूं नवाब चढ़ा सहगल कब्रला को वीर-करुण रस प्रधान खंडकाव्य मानते हैं।
कब्रला के अंतिम अंश में कवि ने करुण-आख्यान किया है। इसके लिए धार्मिक सहिष्णुता और करुणा को इस कल्याण में प्रश्रय देकर मानवता और सांस्कृतिक सम्बन्ध की प्रतिष्ठा का संदेश दिया है। कब्रला की करुण-कथा में प्रेम, वात्सल्य, स्वाभिमान, उत्साह, त्याग आदि के परिपोषित शोक की भी व्यंजना की गई है।
4.5.16 अजित (सन् 1945 ई.)

'अजित' आत्मकथात्मक शैली में रचा गया समसामयिक जीवन से संबंधित चरित्र प्रधान खंडकथाय है जिसका प्रकाशन सन् 1946 ई. में हुआ था। इसमें कवि ने जेन-जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। विषय-निरूपण की वृद्धि से यह एक राजनीतिक कथा है, जिसमें कथावस्तु को वास्तविक-जीवन की स्वरूप दिया गया है। 'अजित' भारत के स्वाधीनता संग्राम का काल वृत्त है। कवि ने राजनीतिक बंधी के रूप में भोगें गए कारावास की स्पीकर के रूप में इसका प्राणिक कारण में आरंभ किया था और इसका मूल अभिधान 'कारा' ही रहा। कालांतर में जब गृहरा ने इसे पूरा करके प्रमुख पत्र के नाम पर ही इसका नाम-संस्कार कर दिया। अजित के माध्यम से गृहरा ने उन सी-सी बंधियों की कथरण कहानी को कथा-यथार्थ बाबूग्रण प्रदान की है, जिन्हें किसी न किसी कारण से यह यात्रा भोगनी फाड़ी है।

4.5.16.1 वस्तु-विवेचन

समस्त काल्य 15 भागों में विभाजित किया गया है। गृहरा ने 'अजित' के मंगला चरित्र में ही अपनी जीवनविषयक प्रकट की है- 'जीवन के संघर्ष हरे के संग सहे हम।' यह जीवनविषयक अन्वेषण के जीवन में भी पाई जाती है। वह एक बड़े मौलिक कृतिका का विवाहित नवनिष्ठ जन्म है।

गाँव का जमींदार अजित के पिता का उद्वेद खेत हथियार के इरादे से पुलिस से मिलकर उसे एक वर्ष के लिए जेल भिड़खा देता है। अजित को कारावास का बंद येलते हुए कई प्रकार के अपराधियों का परिचय प्राप्त होता है। कवि ने अनेक बंधियों के जीवन-झूठांतों का आंखिक करते हुए जेल के जीवन का चित्रण किया है। अजित अपनी नववधु से लौटकर भयों को भी भ्रमफूल और व्यक्ति रहता है। वह धार्मिक तथा कृति की स्थिति के सच्चाईता होते हैं। उसे भारत-माता का उपाय देश-भक्ति और सांस्कृतिक आधुनिक बना देता है। नहीं-तहसील शासन से असंतोष और आक्रोश भी प्रकट हुआ है। एक केंद्री ने आत्मा-यम करने से पूर्व अपने गड़बड़ हुए धन का बेच भी उसे बता दिया है। अजित के पिता दंत-दंत करते जमींदार को 'बाबता ताल' खेतिन में करके अपने निवाल पुत्र की बंधन-मुदता का दमक उठाई आप रहता है। घर लोट आने पर अजित को न पिता मिले न पत्र ही। बिरह काव्य पोंकुर उसके पत्नी का अशु-तर्पण किया।

नायक में उसे अपनी पत्नी का पायल मिला गया जिससे यह अनुभव हुआ कि संभवतः वह दूर मरी है। अजित की ममता भाई धनराज उसे जमानत पर पुछा तत्काल इने का प्रश्न करता है। धनराज के साथ वह वातावरणीय बनकर घर से निकल पड़ता है। उसने केबल साध्य की, भारत को स्वतंत्र बनाने की चिंता है, साध्य जो चाहे हो। मार्ग में उन्हें जमींदार का पुत्र रजू मिला,
निसने बताया कि उसी ने अनित की पतनी को मठ-पूजा के बाहर पर से बुनवाकर प्रभा करना चाहा था, पर वह पतितरता नवी में कूद गयी। रजू की मार डालने की योजना बनाई गयी, पर उसकी पतनी के बीच में आ जाने पर अनित सवय हो गया और रजू बच गया। इस काव्य का यो तिहाई अंश यहाँ समाप्त हो जाता है। यह कथावस्तु का आरंभिक खंड है।

दशम कवयां श काव्य का मध्यांश है, जिसमें अनित के क्रांतिकारी वल के साहसिकतापूर्ण कार्यों का विवरण दिया गया है। अनित क्रांतिकारी वल का नायक अवश्य है, पर वह संरक्षकशील व्यक्ति है और उसकी मनोकृतियाँ भी कोमल हैं। अंतिम पांच काव्यांशों में कथावस्तु का उत्तरार्ध है। अनित का मत परिवर्तन हुआ है और वह गौरीवायी बन गया है। क्रांतिवाल के निरूपक बाबाजी अनित को समझाने का असफल प्रयास करते हैं। वे सर्वप्रथम देश को स्वतंत्र बनाना चाहते हैं। गौरीवाद या माक्सवाल के अधिकार का निर्णय तथा हिंदू-मुस्लिम समस्या का समाधान उन्हें संप्रेषित अनावश्यक नजार होता है। अनित का क्रांति-वल आसन बाधा के कारण बिखर जाता है। वह स्वयं अहिंसा की नीति को अपना लेता है और सन १९२२ में किए गए हिंसा कार्यों की व्यर्थता अनुभव करने लगता है। बाबाजी और अनित को अन्य दोलों के अपने अपने विश्वासों पर बुड़े हैं। अनित की गर्विणी नवी को बाबाजी ने नवी में झुकते समय बचाया था और अब वह नवीती सुरक्षित है। वह अपनी पतनी को पाने के लिए भी अहिंसा का त्याग नहीं करता। जिस गड़े हुए धन का भेद उसे जाता है उसे वह रचनालक कार्यों में लगाना चाहता है। अंत में बाबाजी के आदेश से रजू ही जो स्वयं क्रांति-समिति का सदस्य है, अनित को घर ले जाता है। उसे अनित का खेत बड़प लेने का उपप्रमाण भोगना पड़ा है। कबीर ने भरत और शकुंतला का स्मरण करते हुए, जो दुधंत से वियुक्त होने के कारण अनित पृथु और पतनी उनियारी से साथ रखते हैं, अनित की जीवन-कथा की सुखांत परिभाषा कर दी है।

४.६.२ पाद-योजना

इस जीवनी-काव्य के प्राप्त मानवीय सद्भावना पूर्ण हैं अथवा मानवतावादी हैं। अनित पर ही नहीं घनराज, रजू, बाबाजी और चतरा पर भी भारतीय संस्कृति का प्रभाव है। उनियारी आदर्श पतनी है पर उसका चरित्र पूर्ण अंकित नहीं हुआ है। नायक अनित के चरित्र के विभिन्न पहलू स्वप्रकार कवि ने अंकित किए हैं।

अनित गाव का एक बालक है, जिसकी माँ छुटपन में ही उसे सवा के लिए छोड़ गयी। पिता ने उसे पाला-पौसा और कुछ पद्म भी दिया। खाना-पौना और अखाड़े में लड़ना ही
उसकी विनयया थी। चौर-उच्चका न होने पर भी उसे पकड़ लिया जाता है और एक वर्ष के लिए कारागार में बना दिया जाता है।

जिस अजित ने काम के नाम पर कभी साँक तक नहीं तोड़ी थी, वही कारागार में बैठे की तरह कोल्ड में जुता है और खेत गोड़ा है। दमन का उस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। झड़-बेड़ी पड़ने से उसकी कल्पना गतिशील हो जाती है। कारागार में अजित का भौति-भौति के लोगों से परिचय होता है। वह सभी के प्रति स्नेह, सहानुभूति तथा सहयोग का भाव बनाए रखता है। वह सभी की व्यथा-कठा ध्यान से सुनता है। यहीं उसका परिचय क्रांति समिति के सदस्य दाता श्यामसिंह के सहायता से होता है, जो उसके भावी जीवन-प्रवास पर गहरा प्रभाव डालते हैं।

सहबादी भी अजित से बहुत प्रभावित होते हैं। एक बंदी तो अजित की अपना अनुज ही मानने लगता है और वह अपना समस्त गुप-घन उसे सीधे देता है।

विगत जीवन की स्मृतियाँ जेल-जीवन में अजित को निरंतर सालनी रहती हैं। अखाड़े की मिट्टी एवं सदगया के कारण अजित अपनी पत्नी की उम्र का ही करता रहा था। कारागार में उन गोरे-गोरे हाथों की स्मृतियाँ सजग हो जाती हैं जो उसे कभी के बाल में कदम-भात के साथ बाल-रोटी परोसते थे। उसे जान पड़ता है मानो वह दुखिया मुंह से कुछ बोले बिना ही सब कुछ कह देते हैं। वह अपनी कुललह्सी को इस रूप में देखता है,

“नीची-नीची प्रथा-बृक्ष्टि, आँखें बुखी-सी,
पलंक सूनी हुई और अलंकर रूखी-सी।।
कोने की-सी दीपकिया आगम में जलती,
बुखती-बुखती किसी भावी कुछ काफ संभवती।”

कारागार से मुक्त होने पर उसका ध्यान सबसे पहले इसी कल्पना की ओर जाता है।

वह उन्नीसीरी की खण्ड में निकल पड़ता है। गाँव की नगरी में अचानक उन्नीसीरी का पहुंच मानक से हाथ लग जाता है। जिससे उसे जिस्मात हो जाता है कि उन्नीसीरी यहाँ आकर दूढ़ गयी।

वह अपनी लहजी का अनुसरण करना चाहता है किन्तु चतरा उसे रोककर कह उठता है- ‘लल्लू, अब पर चलो, रात हो गयी अंधीरी।’

अब अजित अपने को पूर्ण रूप से यह घरती-मां को समर्पित कर देता है ‘जो बंधन में पड़ी प्रतिशा में है मरती।’ वह यात्रा के बहाने पर से निकल खड़ा होता है और अधिकारियों को आतंकित करने को अपना दर्शन बना लेता है। इस विद्वा में उनकी सर्व प्रथम मुठभेड़ मुखिया के लड़के रजू के साथ होती है जो बुलाहिन के साथ स्टेशन से घर की ओर आ रहा था। वे बहू को
4.5.17 हिंदिबा (सन् १९५० ई.)

गुरुजी प्रणित ‘हिंदिबा’ खंडकाल्य महाभारत के आदि पर्व की प्रासंगिक कथा पर
आधारित है, जिसका प्रकाशन १९५० ई. में हुआ था। महाभारत के ‘हिंदिबा वध पर्व’ के एक
सी इच्छावसन से एक सी चीज़ अथवा मामलों में हिंदिबा की कथा आयी है। गुरुजी के ‘नयाभारत’ में
भी हिंदिबा प्रसंग के कुछ छंद है। बाद में कुछ छंदों की वृद्धि कर कवि ने इसे स्वतंत्र खंडकाल्य
का वर्ण दिया है। इसकी कथा भले ही महाभारत से ली गयी हो, लेकिन प्रतिपादन शैली
मौलिक है। मूल कथा में भीम का चरित्र प्रधान है और इस काव्य में हिंदिबा का चरित्र मुख्य है
जो नायिका के पद पर प्रतिकल्पित है। इसमें भीम तथा राक्षसी हिंदिबा के मिलन एवं परिणाम
संबंधी आख्यान का काव्य का सुंदर रूप प्रदान किया गया है जिसमें स्थिरोच्च प्रेम-ब्यापारों,
हृदय के बासनतम उदयार्चाएँ एवं बल-शैर्य संपन्न पुरुष के प्रति नायर के सहज आकर्षण आदि
का बड़ा सुंदर एवं सजीव निरूपण किया गया है।”

4.5.17.9 वस्तु-विवेचन

महाभारत के अनुसार नालागुह से सुशिक्षित बचकर पांडव गंगा पार करते हुए एक
भूमिका वन में आए। युधिष्ठिर की आज्ञा से भीम पीपासाकुल माता कुंती और श्रांत बंधुओं को
जल लेने के लिए चले गए और इधर पांडव थकाव के कारण सो गए। पांडवों को सोता
देखकर वन में निवास करनेवाले राक्षस हिंदिबा ने भक्षण हेतु उनके वध का विचार किया।
उनका वध करने के लिए उसने अपनी बहिन हिंदिबा को पांडवों के पास भेज दिया। भीम अपने
भाईयों एवं माता कुंती को सोता देखकर पहरा देने लगे। हिंदिबा भीम की बलिष्ठ देख तथा रूप
को देखकर काम-भाव से भर गई, साथ ही वह उसे अपना पति भी मान बेटी। अतः वह मानुषी
रूप धारण कर भीम के पास पहुँची। भीम भी उसकी ओर आकृष्ट हुए। घटोत्कच की उत्पत्ति
के लिए ही महाभारत में भीम और हिंदिब के युद्ध, हिंदिब की मृत्यु, भीम के साथ हिंदिब के
विवाह और घटोत्कच के जन्म की नियोजना की गयी है।

महाभारतीय कथा की मूल संपन्न को यथास्थल बनाए रखते हुए भी इस काव्य में
अपेक्षित परिवर्तन किये हैं। महाभारत में हिंदिब अपनी बहन हिंदिबा को पांडवों के वध के लिए
भेजता है। 'हिंदिबा' में बन के कष्टों के संबंध में विचार करते हुए भीम पापल की ध्वनि सुनते हैं और देखते हैं।

"वीर्य पढ़ी सुदरी समझ एक उनको।/उल्लिख संपुर्ण से रतनों की शलाका थी,
किंवा अवतारण हुई मूर्तिमती राक्षा थी।"

वे दोनों बातचीत करने लगते हैं। दोनों के संबंधों में शिष्टता और नागर भाव होते हुए भी कुछ इस तरह की मोटी चुटकियाँ है मानों यह संलाप दो अपरिचितों का न होकर दो प्रेमियों का पारिवारिक संलाप हो। 'हिंदिबा' की हिंदिबा राक्षसी नहीं है, क्योंकि प्रय के प्रय उनके लिए दुमने प्रय है। महाभारत की हिंदिबा मात्र काम विख्यात है किंतु यह हिंदिबा मात्र इंडिय-भोग की इच्छुक नहीं है। वह तो पारिवारिक स्थित, समर्पण, त्याग, प्रेम और नारीलव की मूर्ति है। कवि ने मनोविजय का आश्रय लेते हुए पांडवों तथा कुंती को भी हिंदिबा के प्रति आकर्षित दिखाया है। पांडव देखते हैं कि भीम पर आक्रमण किये जाते समय हिंदिबा उसका विरोध करती है। तब हिंदिबा बहिन को भीम के सामने से हटाकर प्रहार करता है। घड़ युद्ध में भीम उसका वध कर देते हैं। महाभारत का हिंदिबा अंत तक बहिन पर कुपित रहता है और हिंदिबा मौन रहती है, किंतु इस काव्य में हिंदिबा उसे आशीर्वाद देता है।

इसके बाद महाभारत के भीम अपने भाइयों के साथ वारणासिक के लिए प्रस्थान करते हैं और हिंदिबा के अनुसरण करते पर उसके वध का प्रस्थान करते हैं जिसे युधिष्ठिर अस्वीकार करते हैं। किंतु गुप्ती के भीम हिंदिबा के साथ युद्ध करते हुए खुद हो गए, इसी कारण वे हिंदिबा के प्रेम भाव को मनुकर कह उठते हैं- "भगिनी भी संग जाएगी क्या भाई के।" यह कथन सहन स्वामाधिक और सम्माननायक है। इस प्रसंग को और अधिक स्वामाधिक बनाने के लिए सुधिन्दिर कह उठते हैं- "भद्रे हम निज को छिपाए हुए हैं अभी।"

हम तुझे मारना तो नहीं चाहते किंतु भयभीत हैं कि भेद न खुल जाए। इस पर हिंदिबा उन्हें आश्वासन करती हुई स्वयं वर्धाण से युद्ध करने का प्रस्थान रखती है। इस काव्य में कवि ने हिंदिबा के वाह-संस्कार की योजना कर वातावरण को शोकमय तथा अधिक पारिवारिक बनाया है। हिंदिबा पांडवों के नियास की व्यवस्था कर कुंती से आज्ञा लेकर तीन दिन का शोक मनाने के लिए पला जाती है। महाभारत में यह प्रसंग नहीं है।

तीन दिन बाद लौट करके माता कुंति से वातावरण करती हुई अपनी बुद्धि योग्यता, शील और सुसंस्कार का परिचय देती है। आकर वह कुंति का निर्देश जानना चाहती है। यथा-
"न्याय से उन्हीं पर न भार मेरा सारा है।/रक्षक जिन्होंने एक मात्र मेरा मारा है।"\(^{185}\)

इस तरह यहाँ हिंदिबा राक्षसी और सर्व सम्बन्ध न होकर असहाय नारी है। उत्तर में कृंती जब यह कह देती है "किंतु हम मानव है और तुम" तो वह होंठ काटकर तुरंत स्वीकार करती है- "राक्षसी" अर्थात छोटी जात, अत्यन्त, अस्पर्श, हीन जाति आदि किंतु साथ ही वह कृंती के आर्यत्व को जगाते हुए अपने को स्वीकार किए जाने के संबंध में तर्क देती है-

"यदि तुम आर्य हो तो यो हमें भी आर्यता,
अपनी ही उच्चता में कैसी कृत काय्यता।"\(^{186}\)

यह कृंती-हिंदिबा का संबंध बहुत विस्तार से चलता है। जब हिंदिबा पुलोतमना (इंद्रदेवी) तथा शर्मीता आदि राक्षस कन्याओं का हवाला देने लगती है, तब तो कृंती निरूतत होकर युधिष्ठिर से परम्परा करती है और उसे पूर्ण काम होने का आशीर्वाद देती है। इसी प्रसंग में कृंती हिंदिबा का हाथ भीम के हाथ में न डेकर उनका पाणिप्रभाण करा देती है। इसी प्रसंग में कवि ने नकुल और हिंदिबा का देवर-भाभी के हास-परिहास का भी अवसर निकाल लिया है।

इस प्रकार महाभारत के कथाक्रम का अनुसरण करते हुए भी कवि ने इस काव्य में अति प्रकृत तथ्यों से बचने के चेष्टा की है।

४.५.२७.२ चरित्र-चित्रण

'हिंदिबा' नायिका प्रधान खंडकाल्यान है। इसकी नायिका हिंदिबा और नायक भीम है।

अन्य पात्रों में युधिष्ठिर, अन्धु, कृंती और नकुल आदि भी यथा राग हिंदिबा चित्रित है। कवि ने हिंदिबा के चरित्र का उल्लेख पश्चात सहानुभूतिपूर्वक चित्रित किया है। डॉ. जे. आर. बोरसे लिखते हैं- "कवि ने उसे नायिका का दर्ज देकर राक्षसी के स्तर से उपर उठाकर मानवी के रूप में प्रतिष्ठित किया है। हिंदिबा राक्षसी है, परंतु गुप्तांगे ने अपनी नारी के प्रति आदर्शवादी इयस्त में उपस्थित नायिकाओं के प्रति अश्रद्धा होने के कारण उसे नायिका की प्रतिष्ठा भी है। हिंदिबा के चरित्र बुद्धि गुप्तांगे ने प्रेम तथा त्याग तथा मानवता की संदर्भ व्यंजना की है। हिंदिबा का चरित्र महाभारत की अपेक्षा इस काव्य में अधिक परिपक्व होकर आया है।"\(^{189}\) डॉ. सतीश गर्ग मत भी प्रत्यक्ष है- "इस काव्य में कवि ने हिंदिबा के चरित्र को अत्यंत उच्च परातल प्रवाह किया है। उसमें परातात्विक स्नेह, अधिकार-भाव और ताकिंता है। यह ठीक है कि महाभारत की हिंदिबा अनार्य, अशिक्षित और वनचरी होने के कारण सामाजिक और सांस्कृतिक वृद्धि से पिछड़े हुए कृति की मूर्ति प्रतिज्ञा होती है किंतु गाँधीवादी विचारधारा के संस्पर्श से उनके चरित्र को युगानुभूता प्रवाह की है। इसी कारण गुप्तांगे की हिंदिबा अनार्य न होकर आर्य है और राक्षसी
न होकर वैण्वी है।”।“66 इस प्रकार महाभारत में हिंदिबा के चरित्र को विकसित होने का अवसर नहीं मिला था, इसलिए गुरुभी ने उपश्रित हिंदिबा को नायिका दर्शा देकर उसके चरित्र का उन्मय निर्माण किया है।

गुरुभी की हिंदिबा संस्कारशील आर्य नारी है। कवि ने राक्षस कुल में जनित हिंदिबा में वैण्वी भावनाओं का समावेश किया है। वह अपनी दानवी प्रवृत्तियों को त्यागकर मानवीय विशेषताओं को ग्रहण करती है। यथा-

“आई यातृ-वंश में हिंदिबा किसी भूल से/वैसे सुसंस्कार वह रखती है मूल से।”।“69

‘हिंदिबा’ काव्य की हिंदिबा मुग्धा नायिका है। उसका प्रेम स्वाभाविक रूप से व्यक्त हुआ है। महाभारत की हिंदिबा का प्रेम वासनात्मक तथा कामभावना से प्रेरित है जबकि यह हिंदिबा इंद्रियभोग की इच्छुक नहीं है। अपने रूप-सौंदर्य और भीम की आकृति करती है। यहाँ हिंदिबा का प्रेम स्वार्थ भाव से ऊपर उठा है। वह भीम को अपना अतिथि समझकर उसकी सेवा में तपस्वी होती है, लेकिन उसका भाई हिंदिब के प्रेम का विरोध करता है। हिंदिबा का यह कदम उसके आदर्श प्रेम का प्रकट करता है-

“प्रस्तुत मैं, प्यार किया मैंने जिसे एक बार, उसके कदम से मरना भी मुझे अंधकार।”।“70

इस काव्य में हिंदिबा एक संवेदनशील नारी भी विख्यात गयी है। महाभारत की हिंदिबा को भाई की मृत्यु पर दुःख नहीं होता उन्हें वह भीम के पराक्रम की प्रशंसा करती है। इस काव्य में वह संवेदनशील नारी के रूप में चित्रित है। वह भाई की मृत्यु पर बिलकुल उठती है-

“हाय मैथा! किसने तुम्हारे रीड़ तोड़ दी? खौंची अनुजा ने सांस अध्य ने छोड़ दी।”।“73

भाई की मृत्यु के बाद हिंदिबा अपने कर्त्तव्य का पालन करती है। आर्य धर्म के अनुसार वह हिंदिब की अन्त्येश्वर करती है। पांडवों के निवास की व्यवस्था कर कुंजी की आज्ञा के लिए वह तीन दिन शोक मनाने के लिए चली जाती है।

गुरुभी की हिंदिबा आध्यात्मिक नारी के समान विचारशील तथा बुद्धिमत्ता से परिपूर्ण है। वह अपने निन्याशील स्वभाव से भीम के समस्त परिवारों को मोहित कर लेती है। वह अपने पान के समय में बुंती से जो परम उपस्थित करती है, उसमें उनकी मृत्यु बुझे और तार्किकता झलकती है। उसने समय-समय पर जो तर्क प्रस्तुत किए वे इस प्रकार है-
“बीर की यथार्थ शुद्धि बीर नहीं, प्रेम है;
और इस विश्व का इसी में छिपा क्षेत्र है।”

“और, राक्षसी भी क्या अमुंकती में बेसी है?
सम्मुख उपस्थित हैं, खोटी खरी जैसी हैं।”

“होकर में राक्षसी भी अंत में तो नारी हैं;
जन्म से में जो भी रहे, जाति से तुम्हारी हैं।”

इस प्रकार ‘हिंदिब’ काव्य की हिंदिबा कामतुरा नहीं संस्कार संपन्न नारी है। वह मुन्या प्रेमिका है। महाभारत की कथोर, संस्कारी नारी यहाँ संवेदनशील हो जाती है। वह बुद्धिमती, विवेकशील और प्रगटिशील नारी नया इंतकोष रखनेवाली आधुनिका है।

भीम का चरित्र मानवीय संवेदनाओं से नाचता है। वह मानुषभक्त बीर एवं साहसी है।

डॉ. सतीश गर्ग के अनुसार- "‘हिंदिबा’ में भीम मानुषभक्ति, दुर्योधन के प्रति कुश्त, आजापालक, सौंदर्य-प्रेमी, वार्ता-कुशल, नारी का सम्मान करने वाले, शिष्ट, मिष्टभाषी, व्यवहार कुशल, तर्ककुशल, नारी रक्षा के लिए संबंध बल-पूजा के विरोधी, साहसी, बीर और रणकुशल दिखाए गए हैं।”

युप्रिष्टिर इस काव्य में आदर्श मानव के साथ-साथ कुटनीतिज्ज भी है। इस काव्य में आदि से अंत तक उनके सिद्धांत और व्यवहार में किसी तरह का अंतर दिखाई नहीं पड़ता। वे शिष्टाचारी, सातिक, निर्मल और अनासक्त चित्रित किए गए हैं।

कुंती के चरित्र में महाभारत बाली कुंती जैसी गरिमा, कुलीनता और स्वाभिमान के वर्णन होते हैं, साथ ही इस काव्य में वह अधिक उदार, तार्किक, समझौतावादी ही नहीं, हास-परिहास करने वाली महिला भी है।

4.1.17.2 भाव-व्यंजना

इस काव्य में भृगुगार रस की प्रमुखता है जो बीर रस की पृष्ठभूमि में खुल निखर उठा है।
भृगुगार, बीर, रोग एवं करण के चित्र अलंकार आकर्षक है। कथाग्रस्ताओं में अत्यंत स्थिरता एवं गतिशीलता के वर्णन होते हैं तथा व्य-तत्त्र हास्य रस-पूर्ण संवाद कथा में विशुद्ध प्रेम की सृष्टि कर देते हैं। जहाँ भीम तथा हिंदिबा के संबंध है, भृगुगार रस का परिपाक है, वहाँ हिंदिबा से युक्त करते समय बीर रस आ जाता है।

299
इसमें कवि की दर्शावता सवारियर है और उन्होंने हिंदिया के नागीन को आदरशवादी परिणति प्रदान की है। हिंदिया का चरित्र और उसकी मान्यताएं नवयुग की विचारणा का परिणाम है। संबंधत हमें, इस रचना में महाभारतीय आलोचना को नवीन अभिव्यक्ति और हिंदिया के चरित्र को नया संसर्ग प्राप्त हुआ है।

3.5.98 युद्ध (सन १९५२ ई.)

‘युद्ध’ खंडकायक का प्रकाशन वर्ष भी ‘जनवरी’ के समान सन १९५२ ई. है। यह जनवरी में भी समाप्त है। जनवरी की सूचना में लिखा है- “युद्ध का प्रकाशन मैंने और ही प्रकाश से लिखा है।”393 इस खंडकायक की कथा भी गुप्तजी ने महाभारत से संबंधित की है। इसमें महाभारत के युद्ध विषयक भीष्म-पर्व, द्रोण-पर्व, कर्ण-पर्व और शल्य-पर्व का आलोचना हुआ है। महाभारत के युद्धार्थ से लेकर दुर्योधन के गर्भ-युद्ध में परास्त होने तक के इतिहास को ‘युद्ध’ खंडकायक का वर्ण-विषय बनाया है।

3.5.98.१ विषय-वस्तु

युद्ध संबंधित विचारों के वर्ण से प्रस्तुत खंडकायक का श्रीगणेश होता है। इसके मंगलाचरण में ही कवि ने यह संकेत कर दिया है कि यह युद्ध के विरुद्ध है। बार-बार राजन रूपी दुष्प्रभावितों जन्म लेती है, वह बार-बार पराजित भी होती है जितने संघर्ष के कारण कितना ही बिनाश अपने पीछे छोड़ जाती है। कितना अनुष्ठान हो कि दुष्प्रभावितों उत्पन्न ही न हो अथवा वे भी सत्ता के साथ मिलकर अपना तमस त्याग दें। यात-

“देख रहा राजन, तू जन्म लेके बार-बार-
कितने बिनाश से भरी है हाय ! तरी हाय !
एक बार प्रेम करके तो देख राम से,
रचना-रचना हम-पुरी होने वे न छार-खार।”394

भगवान कुश्च अरुन के रथ के सारिये मात्र होने तथा युद्ध-रथ में शत्रु-घाण में क्षण-क्षण कर युद्ध न करने की प्रतिज्ञा कर चुके थे। इस खंडकायक का प्रारंभ भीष्म-प्रतिज्ञा से होता है, जिसमें वे प्रतिज्ञा करके कहते हैं कि मैं आज कुश्च को अन्त्र घाण न करते तो मेरे प्रति मिलकर है। भीष्म पितामह इसने प्रत्यक्ष युद्ध करते हैं धांध्य सेना ही नहीं स्वयं धर्मरथ (अरुन) का भी गणपति काम होता है। ऐसी परिस्थिति में कुश्च अपने परम भक्ति-त्वम मित्र अरुन को कातर वेश्य कवि अपनी प्रतिज्ञा की चिंता न करके शत्रु-घाण करके भीष्म के समक्ष.
आ जाते हैं किंतु चक्रपाणि कृष्ण के समस्त भीम उनकी प्रतिज्ञा का समरण करा के चरणों पर गिर जाते हैं और निवेदन करते हैं—

“मारो प्रभो, मारो, यही कोष नहीं, कसरा।
आज मेरे जन्म-मृत्यु दोनों की समासि है।”

युधिष्ठिर ने कहा था कि युद्ध में रहने कोई उनको हरा नहीं सकता और जीतने की आशा भी नहीं करनी चाहिए। फलतः पांडवों ने शिखरी को आगे करके अर्जुन के बाण विपिनियों को बेचते चले गए। क्योंकि भीम उसे नारी समझते हुए उस पर प्रायार नहीं करते थे। युद्ध समाप्त हुआ भीम का शरीर बाणों से जर्जर हो चला था और बाणों पथों के योद्धाओं से घिर गए उपयोग मांगने पर अर्जुन ने उन्हें बाणों का उपयोग प्रस्तुत किया। उस समय दुर्योधन को भीम ने समझा कि बेटा, अब भी तू पांडवों से संधि कर ले। लेकिन वह नहीं माना। कर्ण ने आकर प्रामाण्य किया। उसमे भी युद्ध करने की सलाह थी, लेकिन उसे मानना कोई नहीं करता। क्योंकि सब पर युद्ध का भूत सवार था। उसके बाव ग्रोण के सेनापति बनते ही चक्रमय्युह रचना में अभिमन्यु-वध होता है। जिसके का फल स्वरूप जयद्रथ-वध और फिर उन्होंने का वध किया जाता है। ग्रोण का भी वध होता है। फिर अर्जुन-कर्ण-युद्ध में कर्ण मारा जाता है।

इसीलिए बलराम कृष्ण से पूछते हैं—

“हाय चक्री, क्या हुई तम्भारी वह मुरली?
क्या हुआ तम्भारा वध! कालिन्दी कहाँ रही?
कैसे दिन थे वे कहने कैसे यह काल है?
गार्ड्डों ही भली न थी क्या स्थन-के घोड़ों से।”

आगे चलकर उन्होंने यहां तक कह दिया है—

“सिंहर उठा में यहां सुनकर ही जिसे।
कैसे वह देखा गया तुमसे सहा गया?”

301
तात्पर्य यह है कि बलराम के दुःखार मुग्नजी ने युद्ध की विभिन्निका का एक विस्तृत फलन पर अत्यंत सशक्त और सजीव चित्र अंकित किया है और कृष्ण ने ठीक उस तरह से जैसे अनिश्चित का शोष भगवान अपने सिर पर नहीं लेता, उन्होंने कह दिया है-  

"पाँच गुणा पाठिवर यह यहाँ जिसने,  
वेरी उस एक शीतरानी बहिन की,  
पर्याप्त कर्मण का यह परिपावन है।  
कल भी मंगे, जो न तेंगे सीख आज से।"  

अर्थात् इस युद्ध का कारण नारी का अपमान है, अतएव नारी का समान प्रत्येक मानव समाज के लिए अनवरत्म है। इसके साथ ही उन्होंने यह भी कहा है-  

"युद्ध की अशोभनता जन यदि जान लें,  
तो न होगा व्यर्थ यह इतना अनन्त भी।"  

इस प्रकार महाभारत के भीष्म पर्व से लेकर शत्रु-पर्व तक के महाभारतीय प्रसंगों को गुमनी ने अपने इस लघु ख़ंडकाव्य 'युद्ध' में स्थान दिया है।  

4.5.18.2 पात्र  

जयभारत के समान इस काव्य में भी युधिष्ठिर के चरित्र का आदर्श की भावभूमि पर चिह्नित किया है। इसमें अभिमन्यु के चरित्र को एक आदर्श चरित्र के रूप में स्पष्ट तय किया है। अर्जुन का चरित्र महाभारत के समान ही है। भीम आयुर्वेद प्रतिशोध-वात के पूर्व है। कृष्ण तो तीलामय नदवर और सारी कथा के सूक्ष्मधार हैं। इस काव्य में कृष्ण युद्ध की अनवरत्मता का व्यक्तित्व करते हुए भी उसे अधूरा ही मानते हैं। दुर्योधन को कवि ने सुयोधन बनाने की चेष्टा की है। 'युद्ध' काव्य में कतिपय स्थलों पर उसका चरित्र अर्जुन तथा युधिष्ठिर से भी उच्च विख्यात है। इस काव्य में महाभारत की तरह दु:शासन का वध भीम दुःखार होता है। इस काव्य में प्रोणाचर्य की अत्यंतत्वा का व्यक्ति किया है। बलराम का चरित्र महाभारत जैसा ही है। कुल मिलाकर इस लघु ख़ंडकाव्य में गुमनी ने पात्रों का चरित्रांकन कथा एवं प्रसंग के अनुसार ही किया है।
8.4.18.3 भाव-व्यंजना

रसात्मकता की दृष्टि से इसमें काफी प्राप्त है। इस काव्य में ओज गुण की प्रधानता है। बीर, रौद्र, भयानक और बीमार्थ साध ही व्यंजना संदर्भ दंग से हुई है। यह गांधीवादी विचारधारा से संबंधित काव्य है। इसमें सुदृढ़ की विशीमिका के साथ शांति और अहिंसा का प्रतिपादन किया है। डॉ. बिनय प्रसाद ने कहा है- "मानव की सुदृढ़ लिप्स्या की निवारण करते हुए कवि ने 'सुदृढ़ खंडकाय' में जो विचार व्यक्त किए हैं, उन्नत गांधीवादी विचारधारा का गहरा प्रभाव लेखित होता है।" इस प्रकार रस परिपक्व और भाव व्यंजना इस काव्य में चरम सीमा पर है।

8.5.19 विष्णुप्रिया (सन १९५७ ई.)

सन १९५७ ई. में रचित 'विष्णुप्रिया' गुरुजी का प्रोडोक्टर काल का खंडकाय है। गुरुजी के अन्य खंडकायों और महाकाव्यों के कथानक की तरह विष्णुप्रिया का कथानक भी भारतीय नारी का उपलब्ध जीवन का लेख व्यक्त हुआ है। इस प्रकार कवि की सांकेतिक लिखने की प्रेमण स्वीकारने वेदोर के लेख से मिली थी, उसी प्रकार विष्णुप्रिया की प्रेमण जैसा कि विष्णुप्रिया के 'चिन्हन' में स्वयं गुरुजी ने लिखा है कि, दीनो के प्रसिद्ध उपायपति श्रीवामतुजी दलिमियाजी ने गुप्त जी को कहा था- "आपने 'उर्मिला' पर लिखा है, 'यशोपरिई' भी लिखी है। मेरा प्रस्ताव है, श्री चैतन्य महाप्रभु की गृहिणी विष्णुप्रिया पर भी आप अवश्य लिखिए।" इसी प्राप्तावरोध को गुरुजी प्रेमणानूतन बनाकर आगे बढ़े और उन्होंने महाप्रभु चैतन्य और विष्णुप्रिया के जीवन संबंधी साहित्य खोजना और अध्ययन करना शुरू किया। वास्तव में गुरुजी श्री चैतन्य देव से कुछ परिचित थे, परंतु विष्णुप्रिया के संबंध में उन्होंने कुछ नहीं पढ़ा था। गुरुजी ने यह बात दलिमियाजी को बता दी। तब उन्होंने कहा था- "वह साहित्य अधिकतर बंगला भाषा में है। मैं कुछ भेज दूंगा। मुझे आशा है, उससे आपको स्पष्टि मिलेगी और प्रभु चाहेंगे तो आप लिखेंगे भी।" बाद में जयवाप होने पर कुछ संबंधों का बंदल कवि के पास भेज दिया। इस काव्य की कथावस्तु का आकलन कवि ने मुख्यतः शिशुश्रुषामार चोथ की बंगला गंगावली, श्री अमित निमाई चरित और श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी के द्वारा कई खंडों में लिखित 'श्री चैतन्य चरितवली' से किया। हिंदी और बंगाली के अन्याय संस्कृत को कवि ने जहाँ-तहाँ देखा है। इस प्रकार गीता प्रेस का तीन भागों में विरचित 'चैतन्य चरितामृत' का भी अध्ययन किया। इस संबंध में कवि का व्यक्ति है- "प्राप्त सामग्री जो आज तक से भी में बहुत नहीं पढ़ पाया हूँ। परंतु
कथा मैंने संकेत में जान लिया। वास्तव में महाप्रभु के विषय में मुझे कोई खोज नहीं करनी थी।

इतना ही जानना था। विष्णुप्रिया का व्यक्तित्व तो मानो स्वयं उन्होंने मेरे अंतर्गत में आकर स्पष्ट कर दिया था।"२०८ इस प्रकार जल-तत्त्व से सामग्री एकत्र कर गृहजी ने ‘विष्णुप्रिया’ की निमित्त कर दाली। इसमें श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनकी गृहिणी विष्णुप्रिया का चरित्र कविता बन गया है। डॉ. कमलाकांत पाठक लिखते हैं- "इसमें परिपक्वता पत्नी के जीवन-चरित्र का आकार करते हुए कवि ने प्रेम के जीवनन्यायी साधनात्मक रूप का आलंकार किया है। विष्णुप्रिया उर्मिला और यशोदा का चरित्र-कल्पना का विकास है।"२०९ डॉ. दारिका प्रसाद सावसेना का अभिप्राय भी वृद्धिवाला है। "इसमें भवत-प्रवर चैतन्य महाप्रभु की पत्नी विष्णुप्रिया के जीवन की ध्वनि कि गयी है। उर्मिला तथा यशोदा की भावना भी अभी तक विष्णुप्रिया भी हिंदी काव्य के लिए उपयोगिता नारी थी। अतः गृहजी ने जिस तरह ‘साकेत’ एवं ‘यशोदा’ की रचना करके क्रमशः उर्मिला तथा यशोदा के उपयोगिता जीवन की काव्य-रूप देने की चेष्टा की, जैसे ही विष्णुप्रिया नामक इस काव्य में चैतन्य महाप्रभु की पतियों पत्नी विष्णुप्रिया के उपयोगिता जीवन की पाठकों के सम्प्रभु प्रसन्न करने का स्वरूप विश्वास किया है।"२१० इस प्रकार इस काव्य का प्रणयन विष्णुप्रिया के उपयोगिता चरित्र के पुरस्करण के निमित्त हुआ है।

२०८.१९८ वस्तु-विवेचन

विष्णुप्रिया काव्य का आरंभ गृहजी ने देवप्रेम के अभिप्राया चैतन्य महाप्रभु के स्वरूप से किया है। उसके बाद चैतन्य की जन्मदिनी भूमि बंगाल, उनके माता-पिता, परिवार, चैतन्य जन्म, उसके ब्यक्ति कौशल, शिशु-दीपक का संकेत किया है। चैतन्य के सहयोगी रघुनाथ की तुल्यता करने के लिए न्याय पर लिखे अपनी रचना को गंगा अर्पित करनेवाली तथा दिनरात्री कठिनाई पंडित आचार्य केशव को लेकर मरावल बनाने की भूमिका किया जिसके उपरांत विष्णुप्रिया का उपयोगिता काव्य के प्रवास में प्रसार करने वाली चटना को किंवत्रित विस्तार दिया गया है।

उक्त वर्णन के प्रतीत बिना अध्ययन या सर्व परिवर्तन किए हुए केवल +++ चिह्नों का आश्रय लेकर कथा का दूसरा मोड़ दिया गया है। इस प्रसंग में विष्णुप्रिया और उसकी सही के वातावरण में विष्णुप्रिया की आसक्ति और हरी में विश्वास गई है। विष्णुप्रिया भावभित्र और कह उठती है- "मेरे भगवान सबके हों, मैं उन्हें की हूँ।"२११ इस कथन में आगमी कथा का बीज भी निहित विश्वास करता है। विवाहोपरांत गुरूप्रेम के समय विष्णुप्रिया के ठोकर खाने और-

"वर ने अंगूठे से अंगूठे को ब्रत दिया, / रक्त रक्त कितने बड़ी दूनी अनुरक्तता।"२१२
यह प्रसंग बंगाल में अत्यंत प्रचलित है। गुप्तजी ने ‘त्याग पर तेजी जीवन टिकी’ गीत के माध्यम से विष्णुप्रिया के मनोभावों का उद्धारण किया है।

इसके बाद पंडितनाथ करने के लिए चैतन्य के गीत जाने का प्रसंग है और चैतन्य के गाया-गमन के परशुराम में विष्णुप्रिया तथा उसकी सुखी का वार्तालाप चित्रित किया गया है। इसी संदर्भ में कवि ने दो गीतों की सृष्टि भी की है। ‘अब तक लीट नहीं प्रवासी’ गीत में विष्णुप्रिया की प्रतीक्षा और आत्मसहायता का मार्गिक चित्रण किया है। चैतन्य गाया से लोटों हैं और यह भी स्वीकार करते हैं कि ‘प्रसूत: तुम्हारा ही दिया वह मिला मुझे’ इसके परछान पुनः परंपरित कथा की योजना है, जिसमें श्री अद्वैत, श्रीनिवास, नित्यानंद अब्दुल्ला, मुस्लिम जाति के हरिवाल, नगर कानी, मुरारिगुप्त आदि के चैतन्य की शरण में आने चैतन्य की भूमिका के प्रचार व प्रसार तथा भक्तिवद्ध में चैतन्य के अन्तर्गत होने की तथ्य है। इस प्रसंग में कवि की गौरिलक्षण के दर्शन उस समय होते हैं जब चैतन्य मूर्तिक श्रोतर मिट्टा हैं, नित्यानंद उन्हें समझते हैं किंतु चोट सहनी थी उनकी विष्णुप्रिया। इस स्थिति में यह गीत हमने एक विचित्र प्रकार की कल्पना का उद्देश्य करता है–

“मानो अब निज से भी न्याये, खोए से रहते हैं प्यारे।
सिख, मैं लानों मर गई सुन उनकी यह बात,
रास रचो राधे, चलो आज रूपन्हले रात।”

इस गीत के साथ ही गुप्तजी गीतिका में विष्णुप्रिया की सृष्टि की है वह अत्यंत मार्मिक बन पड़ा है। चैतन्य अग्रण का अनुज बनने अथवा रत्नादि शरण में अन्ततः होने की बात कहते हैं। माँ हमना कह कर सन्न हो जाती है। और विष्णुप्रिया इस प्रसंग पर स्तव्य होती है–

“विष्णुप्रिया स्तव्य हई सुनकर पहले।
प्रांत-सी उन्हीं की आर कुछ श्याम देखा की।
कौंपी फर और निम्न पैरों पर उनके,
निगड़ लता-सी गति-रोपरक लिपडी।”

चैतन्य के समाज में पर उनका जीवन है– “रो-रोकर मरना ही नारी लिखा लाई हैं।”
हास्य विष्णुप्रिया की ये पंक्तियाँ यशोराधर की इन पंक्तियों का विचार कर कहते हैं– “अबला जीवन तुम्हारी यद्य कहनी।” किंतु विष्णुप्रिया यशोधरा न होकर विष्णुप्रिया है। वह स्वयं गृह-त्याग की बात करती है, उनके दूर से वर्षा करने की बात करते हुए कह उठती है–

305
“मेरे त्याग में ही तुम महाराज त्याग पूरा है,
यथापि तुम मेरे वेद ऐसा नहीं करते...
कौन त्याग पूर्ण होगा त्यागकर मुझे को
धर्म के विरुद्ध ही तुम महाराज यह करते हैं।”219

यहाँ कवि ने चैतन्य के चरित्र में भी किंचित परिवर्तन किया है। इनका कथन है कि वह
भोग के लिए नहीं त्याग के लिए एक सैनिक के समान जाना चाहते हैं। नारी ही सैनिक को
सजाती है, नारी ही त्याग करती है, नर नहीं। नारी का धर्म प्रेम है, चैतन्य उसी के प्रसार हेतु
जाना चाहते हैं। लाखों आर्ततन मेरा आवाहन कर रहे हैं- ‘सबके हितार्थ मेरा दान कर दो।’
आगे उसे मनाते हुए कहते हैं, ‘चाहोगी मुझे जब, समीप तुम पाओगी, इतना ही नहीं ‘तुमने
बरा था मुझे, आज में तुम्हें वर्तू।’ यह कहकर उसे पुष्पहार पहिनाते हैं, अंक में बैठाकर प्यार
करते हैं। नारी इवत विपलत तो जाता है किंतु उसने व्यंग करते हुए कहा है-220

“यह वलिपूर्व वलि पशु का खिलाना है।
शिक्षत तुम मेरे, क्यों न वेण्याव हो औरों के,
पशु नही नर-वलिये नहीं लेते हो।”221

यहाँ भी यशोद्वर जैसा ही दृश्य उपस्थित होता है। विष्णुप्रिया भी यह उठती है- ‘हाय!
मैं छछी गई हूं, छिपकर ही भागने वे।’ किंतु स्वयं ध्यान धारण कर वह भी माँ को समंतली है।
उसका मरन अंदर-ही-अंदर चीख उठता है-222

“भरी गोव ही होती मेरी, तो सराते दिन सह लेती में,
तिनके का भी कहाँ सहारा, जिसके बल तो वह लेती में।”223

कवि ने विष्णुप्रिया के मनोभाव व्यक्त करने के लिए इसी प्रसंग में सात गीतों की रचना
की है। चैतन्य के संप्रदाय हों जानेवाले समाचार ने तो विष्णुप्रिया को पागल-सा बना दिया है।
विष्णुप्रिया की मानसिकता इस सरंग में विपय गए चार गीतों में मुख्तिर हो उठी है।

शांतिपुर में चैतन्य आते हैं। माँ के लिए तो निमंत्रण मिलता है किंतु विष्णुप्रिया के लिए
वर्जन। माँ गई, लोक भी आई। विष्णुप्रिया सास को ही प्रत्येक देवता मानने लगी। बीच-बीच
चैतन्य के समाचार प्रास हो जाते हैं, मानों बही दोनों दे के लिए सहारा है। इस प्रकार में स्पर्श
गीतों में विष्णुप्रिया की वेदना का गायन है। चैतन्य द्वारा वस्त्र में जाने पर वह कह उठती है
इसमें अभिव्यक्ति जब्त है। इससे आगे के पाँच गीतों में पारंपरिक, उर्मिला और यशोधरा के समरण के साथ-साथ विष्णुप्रिया की कर्तव्यनिष्ठा का चित्रण है।

इन गीतों के बाद विष्णुप्रिया और उसकी सही का बारतालाप है जिसमें संयम-मार्ग पर व्यंग्य है। इसके बाद पए एवं उत्सवों के संबंध में एक गीत की सृष्टि की गयी है। यहाँ भी यशोधरा के समान ही कवि ने क्तुत्वर्णन किया है। यहाँ ध्यात्म्य यह है कि श्राध्व-पश के पर्चाल नवरात्रत्व एवं विषयाधिकृत जैसे उत्सवों का वर्णन किया है। इसके बाद चेतन्य के दृश्य से लोटने के बाद उसके उम्मि के बढ़ जाने की सृचना विष्णुप्रिया एवं शरी को प्राप्त होती है। यहाँ एक गीत में विष्णुप्रिया की व्यथा का विचार है। राय रामानंद से मेंट, कोड़ी से मेंट, वासनामिताओं और वेदवासियों के उद्दार की कथा के समाचार से विष्णुप्रिया आश्वस्त होती है। चेतन्य के साथी निम्नानंद के उद्दार होने वाले समाचार से तथा चेतन्य के आगमन के समाचार से वोहाँ ही आन्तित होती हैं। इस प्रसंग में कवि ने जिन तीन गीतों की रचना की है वे भावोत्तर में अत्यंत समर्थ हैं। वोहाँ के पुर्निर्मल के विचारन में कवि कौशल का परिचय मिलता है।

“बोले-” तुम कौन हो ? उठी वह तुरंत ही
श्वस फणिनी सी नहीं, आकूल हिलोर-सी।”\(^\text{29}\)

“जानती नहीं में अब कौन, किंतु पहले
एक दूसरे को जानते वे हम वोहाँ ही।”\(^\text{30}\)

इस मर्मस्पर्शी कश्न का अंशित प्रभाव पड़ना ही था। चेतन्य क्षमा मांगते हैं और भगवान का ध्यान करने की शिक्षा देते है। किंतु विष्णुप्रिया के लिए यह संभव ही नहीं था। इसके उपरांत विष्णुप्रिया चेतन्य की खड़ाई लेकर लोट आती है। आगे उसके बुधारे गाय गए दस गीत आत्माभिमयंजन की दृष्टि से अत्यंत संदर्भ बन जाते हैं। इन गीतों के परचाल चेतन्य-कथा का वह अंश है, जिसमें गोविंद घोष, रूप सनातन आदि के साथ उन्होंने दृश्य का उद्दार किया है और संपर्की प्रकृतांसन्धोन्म नी दृष्टि भक्त बनाया है। श्री विनम्राचार्य से भी उनकी भेंट का वर्णन है।

इस सुगंधित श्रीवास्तवम में परिशिष्ट की योजना अवश्य की गयी है जिसमें चेतन्य के प्रभु मूर्ति में बिल्ली होने का संकेत है। इसके परचाल कथा का उपसंहार है। विष्णुप्रिया ने घर में मंदिर बनाकर प्रतिमा स्थापित की और उसके जीवन-यापन का नियम बन गया था।

307
“प्रतिविन मंत्र श्लोक जपती थी जितने
गिती के उतने ही धान्य कण लेती थी।”

गुरुमी जैसे रामबाण कवि की विष्णुप्रिया अंतिम दो गीतों में सीता और राम का समरण करती है। यहीं विष्णुप्रिया खंडकाव्य की कथावस्तु है, जिसे गुरुमी ने अपने काव्य की प्रभविनुष्ठा से संबंध कर रखा है। कथा को अत्यंत रोचक बनाने के लिए काव्य में जिन करण तथा मार्मिक प्रसंगों की सूची की है, वे पाठक के हृदय को प्रवृत्ति वर्तन में समय हुए हैं।

4.5.19.2 शील-निरूपण

विष्णुप्रिया नाथिका प्रधान खंडकाव्य है। कवि का ध्यान विष्णुप्रिया के तप-त्याग, सेवा-निष्ठा तथा प्रेम और वियोग की ओर विशेष रूप से रहा है। विष्णुप्रिया में भारतीय संस्कृति में भारतीय नारी का आदर-धर्म के अनुरूप जो आदर्श है, उसकी प्रतिष्ठा हुई है।”

विष्णुप्रिया महापुरुष चैतन्य की दृष्टि पतनी थी। आज भी बंगाल में उन्हें प्रत: स्मरणीय, शैक्षिक, अधिकारी और राष्ट्र का अवतार माना जाता है। साथ ही उन्हें चैतन्य के महत्त्व कार्य के पूरक रूप में ही स्वीकार किया जाता है। इतिहासकारों के मत में चैतन्य के साथ इनका विवाह अल्पवस्तु में ही हो गया था और विवाह के एक वर्ष के आसपास ही चैतन्य उन्हें अपनी माँ श्री की सेवा में छोड़कर संन्यास हेतु चले गये थे। एक बार जब वे वृंदावन से लीटकर नदिया से गुजरे तो भीड़ में स्वागत हेतु खड़ी विष्णुप्रिया को उन्होंने नहीं पहचाना लेकिन समाज के आग्रह पर उन्होंने अपनी खड़ाई विष्णुप्रिया को दे दी। पति की खड़ाई लेकर विष्णुप्रिया एक प्रकार से समाधिस्थ हो गयी।”

गुरुमी की विष्णुप्रिया उमिली और यशोधरा के समान ही एक पतियुक्त नारी है, बल्कि यों कहिए कि एक सामान्य महाभारत परिवार की ऐसी नारी है जो निःसंतान तो ही है, साथ ही उसे पति वियोग सहने हुए सास की भी सेवा करती है और गुरुमी के पक्ष में अजीविका का उपार्जन भी करता है। गुरुमी ने विष्णुप्रिया के चरित्र को बंगाल की भावभूमि से निर्मा भारतीय नारी के रूप में प्रसन्न करने की चेष्टा की है। श्री ऋषि जैमिनी बर्हा ने स्पष्ट शब्दों में कहा है- “गुरुमी की लेखनी से विष्णुप्रिया की जो मूर्ति प्रकट हुई है, वह शुभ्र है, शीलवती है, पर बंगाली भाव-भूमि की उपज वह नहीं है। राष्ट्रभारती के स्थर से उसका समय सत्य राष्ट्रीय स्तर पर इस तरह निकार गया है कि बंगाल की सीमाओं से ऊपर उदकर सदिश वाणी से लम्बा वह राष्ट्रभारी बन गई है।”

तात्पर्य वह है कि गुरुमी ने विष्णुप्रिया के चरित्र में कतिपय महत्वपूर्ण परिवर्तन किए हैं।
गुरुजी ने विष्णुप्रिया काव्य में चैतन्य की पहली पत्नी लक्ष्मीप्रिया की ओर संकेत न करते हुए विख्यात है कि वह स्वयं चैतन्य के प्रति अनुरक्त थी और इसलिए स्नान करने जाती हुई माता श्रीरंजन के चरणों में प्रणाम किया करती थी। गुरुजी ने विष्णुप्रिया को सुसंस्कृत, शीलवती, सलज, योपन-संस्रम चित्रित किया है। परंपरागत काव्यों में प्रथम पत्नी के वियोग से दुःखी चैतन्य मारे के अनुरोध से विवाह करते हैं और विष्णुप्रिया की मां की सेवा में छोड़कर चले जाते हैं। गुरुजी के ‘विष्णुप्रिया’ काव्य में विवाह के बाद पिंडदान के प्रसंग से चैतन्य में उत्तरोत्तर गृहस्थी के प्रति विरक्ति-भाव का विकास दिखाया गया है। उनकी विष्णुप्रिया सखी से कहती है- ‘मेरे भण्यान सबके हो, मैं उन्होंने की हूँ।’

यद्यपि, आनंदप्रकाश दीक्षित के अनुसार- ‘संकेत जैसे इस बात की ओर हों कि भविष्य में इस शील-संस्कारती कन्या को यह भी सहन करना होगा कि इसके पति-तेवता गुह-त्यागी बनकर जन-जन के हो जाएँगे और यह पति-परायण अनन्य भाव से उनकी उपासना करती रहेगी।’

विवाहोपरांत चैतन्य युवारा औषधि से औषधि को दबा देने की घटना से भी विष्णुप्रिया का प्रेम उत्तरोत्तर विकसित होता है। पिंडदान के प्रसंग में विष्णुप्रिया और सखी के वार्तालाप से यह स्पष्ट ही है। गया से लौटने के बाद चैतन्य और विष्णुप्रिया के वार्तालाप तथा चैतन्य की भावमुद्रा में दृश्यों तो विष्णुप्रिया के प्रेम, शील, सेवा परायणता और चैतन्य के बार-बार अनेकों जाने पर उसके गहरे दुःख का परिचय मिलता है। संन्यास के बारे में मां से परामर्श करते हुए चैतन्य वास्तु से भी आजा लेने की बात करते हैं। इस प्रसंग से विष्णुप्रिया एकदम निष्ठव्ध हो जाती है और निगड़ता के समान चैतन्य के पेरों से लिपट जाती है। यथा-

“विष्णुप्रिया स्तव्ध हुई सुनकर पहले। ब्राह्मण-सी उन्होंने की ओर कुछ शण देखा की।
कौम सी फिर और फिर पर उनके,
निगड़ लता-सी गति-रोपकर लिपटी।
रोई वह कितु बोल पाई नहीं कुछ भी;
आयू वह निकले, वचन नहीं निकले।”

चैतन्य के बाद जाने पर विष्णुप्रिया नीतिकोट्ठ, सास-सेवा और परिचिति के सहारे समय व्यतीत करती है। कवि ने विष्णुप्रिया में प्रेम, पीड़ा और कर्त्तव्य-भावना का समन्वय किया है। चैतन्य-दर्शन के माध्यम से उसके आत्मवाद की अभिव्यक्ति की है और पवित्रत्व के माध्यम से उसकी करुणाशील सामाजिक चेतना, बेदना और उदार भावना को प्रकट किया है। वह अपनी सास को भी समझाती है और वियोग-वेदना को सहाती है। पुरुषमिलन के अवसर पर
रंगराणात काव्यों में विष्णुप्रिया के प्रति चैतन्य की अवहेलना का वर्णन किया गया है। किंतु गुरुजी ने इस प्रसंग में उसे दर्शाया कि विष्णुप्रिया के प्रति अन्य को सहजता का वर्णन किया गया है। वह पद की स्थिति मध्यमता है इसलिए उल्लास भी केसे दे। चैतन्य के पूर्णे पर तुम कोम हो, तब उसने यही कहा-

"जानती नहीं मैं, अब कोरा, किंतु पहले,
एक दूसरे को जानते थे हम दोनों ही।
भले तुम हाय ! मैं ही मूल नहीं पाई क्यों?
"

यह कथन जहाँ एक और विष्णुप्रिया के प्रेम, पति-भक्ति आदि भावों को व्यक्त करने में सक्षम है वहाँ नारी की विवशता को भी व्यक्त करता है। चैतन्य उससे अपना विचार है और वह उसके पर्यक्ष भाव पर यह कहकर प्रश्न चिह्न लगा देती है कि तुम मुझे भगवान का भजन भी नहीं करने देते। इस तरह गुरुजी ने विष्णुप्रिया को जिस चारित्रिक धरतियाँ पर प्रतिस्थित किया है, उससे यह सिद्ध होता है कि विष्णुप्रिया पारंपरिक काव्यों की नाभिका न होकर प्रेममयी के साथ तर्कमयी नारी भी है। वह चैतन्य जैसे प्रेम-साधक के हादय को भी व्यक्तिको देती है। चैतन्य उसे सम्मान देने के लिए उसके सामने नंगे पैर खड़े हो जाते हैं। उनकी खड़ाऊ लेने पर नब वह कारण पुछते हैं तो विष्णुप्रिया का उत्तर है-

"तारक, तुम्हारे पद-चिह्न बने इन में,/पोत बन पार कर देने यही मुझको।"

इस प्रसंग में उसकी एक दशकता और तनिक और निध जाकर गीत में उसके हताश जीवन और असफल प्रेम की अभिव्यक्ति होती है। चैतन्य संबंधी काव्यों में चैतन्य के स्वर्गरोशन के पश्चात उनकी माँ शरी का स्वर्गवास हो जाता है, किंतु गुरुजी ने शरी की मृत्यु पहले और चैतन्य का स्वर्गरोशन बाद में दिखाया है। शरी के मरणोपरांत विष्णुप्रिया मरने के अवकाश और अंधन की कठिनाई के दूसरे का बत वह कहते हुए भी मर नहीं पाती, क्योंकि वह पति स्मरण छोड़ नहीं पाती। यहाँ उसके चरित्र की निर्भरता इन्द्रिय स्वरूप है। चैतन्य की मृत्यु में विलीन होने का स्वप्न उसे आता है, वह सती भी नहीं हो सकती क्योंकि स्वप्न में आदेश था-

"आदेश पहले मरण आत्मघात है। मेरी एक मृत्यु रखो निज गृहक्षण में।" इसीलिए ‘मंदिर बनाया निज गृह उस देवी ने।’ इस तरह विष्णुप्रिया एकांतवासिनी हो गयी और जितने मंत्रस्थल कपाली थी उतने ही धान्य-कांणों का भोजन करते हुए पति, सीता और राम का चित्र करती थी।

इस प्रकार गुरुजी ने ‘विष्णुप्रिया’ काव्य में विष्णुप्रिया के जिस चरित्र का विवरण किया हैं, वह भारतीय मध्यमयणीय परिवार की शहनशाख, पतिपरायण और सदुग्रहस्त नारी का चित्र
हे। सब मिलकर यह कहा जा सकता है कि विष्णुप्रियाम चारिन्द्रिक आदर्श की प्रबुद्धता तो है ही साथ ही साथ भक्ति तथा सेवा वृत्ति का भी अद्वैत परिचय मिलता है।

चैतन्य विष्णुप्रिया के दूसरे प्रमुख पात्र हैं। डा. कमलाकांत पाठक ने उनके शील-निरूपण के विषय में लिखा है— "नवदीप के मायापूर्ण ग्राम में जगन्नाथ और श्री योगी हुए। गौर के अम्मा विश्वस्वरूपाय में ही संयमकी हो गए। कालांतर से जगन्नाथ भी स्वर्गवासी हुए। माता ने गौर का लालन पालन किया।" विष्णुप्रिया में कब ने चैतन्य के चरित्र की मूल रेखाओं में संक्षिप्त मात्र भी परिवर्तन न करके कथा में ही थोड़ा सा संगोपन किया है। मूलकथा में विष्णुप्रिया चैतन्य की दूसरी पत्नी थी। उनके जीवन चरित्र में कहीं-कहीं यह भी उल्लेख किया गया है कि वे संयम लेने से पूर्व अपनी माँ के समान निर्भरता से संयम की आज्ञा लेने गए थे। यह तो स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि संयमी चैतन्य से उसकी माँ एक या दो बार मिली थी। कहीं-कहीं यह भी उल्लेख मिलता है कि विष्णुप्रिया भी चैतन्य से मिली थी और चैतन्य ने उनका निरस्कर किया था।

गुम्बरी ने विष्णुप्रिया को चैतन्य की प्रथम पत्नी ही नहीं माना है बल्कि अंग्रेज़ी व्यक्ति, गया जाने तथा संयम के प्रकार में भी संयोग के अवसर पर उपस्थित किए हैं। इन प्रकारों में चैतन्य के तत्व-परिवारक समय चरित्र का भी परिचय मिलता है। विष्णुप्रिया नवदीप (नवदीप) में चैतन्य के शर्तभी लिखी है। चैतन्य का स्वर्गवास सन् १५३३ ई. में हुआ था। इस समय उनकी आयु मात्र ३८ वर्ष की थी। वेशांत से १५ वर्ष पूर्व में एक बार चैतन्य नवदीप आए थे। इन्होंने अपनी माँ से तो बातचीत की थी, परंतु विष्णुप्रिया को न पहचानकर सामान्य रूप से अनादर किया था। गुम्बरी के चैतन्य विष्णुप्रिया को न तो निरस्कर करते हैं और न उनके प्रति क्रुद्ध होते हैं।

इस तरह गुम्बरी ने विष्णुप्रिया काव्य में विष्णुप्रिया के उपेक्षित चरित्र को तो सशक्त रूप में प्रस्तुत किया है ही साथ ही चैतन्य के पारंपरिक चरित्र की रचना करते हुए विष्णुप्रिया के प्रति उन्हें अधिक सहजता रूप में भी चिह्नित किया है।

8.५.१६.३ भाव-व्यंजना

विष्णुप्रिया की रस-योजना पर टिप्पणी करते हुए डा. आनंद प्रकाश दीर्घकाल लिखते हैं— "विष्णुप्रिया" काव्य भारतीय उदात्त काव्य की परंपरा में शांत रस में परिणत होता है। मूलतः यह विप्रलंब काव्य है, किंतु श्रृंगार के विप्रलंब पक्ष और शांत के बीच रीढ़, हास्य तथा करुण की भावधाराओं का निरूपण तथा नाटकीय दृश्य संयोजन और घटनाओं का निर्मम बोध उसे
ण्याक पर तथा गहन रसायनूद्वीति कराने में सक्षम बनाता है।''३३२ श्री जयकृष्ण अग्रवाल भी लिखते हैं- ‘‘प्रथमनिर्देश गुजार ने विषुयुगिया में खंडकाय थे सिखाया का पालन करते हुए श्रृंगार रस को प्रधान रूप में स्वीकार किया था और कला, हास्य, बीप्पता, शांति व भक्ति रसों की गोष्ट में वर्णित किया है।’’३३३ डा. कमलाकांत पांडेय का तत्त्व दृष्टिव्यत है- ‘‘विषुयुगिया’ रसायनक वाक्य है। इसमें कथा-विप्लव का नि:स्वरूप, साधनशील, कर्मशतिविश्व, त्यागपूर्ण, साधिक और अनन्य तथा उत्कृष्ट रूप में व्यक्त हुआ है। संयोग-चित्र भावात्मक और मयावतित है। कहीं भी कवि ने श्रृंगार का अंतर्गत तथा भोगनिष्ठ स्वरूप निरदेशित नहीं किया है। विषुयुगियाका निपुण होने का ही खैर है और आश्रम-प्राप्त का सम्पन्न अवसर न कर पाने का क्रम। प्रेम के उदय और उज्ज्वल रूप का आलेखन करके कवि ने उसकी चर्चा को साहित्य का आचरण बनाया है। प्रेम के जीवन व्यापी स्वरूप का आलेखन होने के कारण इस काव्य में उसकी व्याकरणता ही नहीं प्रकट हुई, वरनु नन्दा और उनके व्याख्यातयां की व्यजना भी की गई है।’’३३२

इस काव्य में कवि का मानवतावादी जीवन-दर्शन, तप और त्याग तथा प्रेम और कला की धृतियाँ देखी गईं हैं। इस रचना में जीवन के बैशक्तिक, खूबसूरत कारकिस्वर और सामाजिक तीनों पहलों को कवि ने समन्वित किया है। सांस्कृतिक मनोभावना की प्रेरणा से उन्होंने शील का नैतिक आदर्श भी अभिव्यक्त किया है।

8.५.२० रत्नावली (सन १९६० ई.)

मस्तिष्कीन इतिहास पर आधारित यह रचना महाकाव्य तुलसीदास की धर्म पत्नी रत्नावली के जीवन से संबंध है। इसमें रत्नावली के बाल्यकाल, विवाह, तथा विराहस्य का वर्णन है। गुजारने यह कृति विभिन्न समयांतर नंतर जी को समर्पित की है। वालस्वयं इस खंडकाय का प्रारंभ गुजारने सन १९५४ में ही कर दिया था। परंतु अस्तस्थान के कारण गद्यरूप हो गया। इसी बौद्धिक कवि ने ‘‘विषुयुगिया’ की रचना कर दी थी। सन १९६० ई. में कवि की दृष्टि पुनः अपनी इस अद्वैत रचना पर गई और उन्होंने इसी वर्ष इसे पूरा कर दिया और इसका प्रकाशन भी इसी वर्ष हुआ। यह आत्मकथा जैसी रचना है। तुलसीदास की परिपक्वता रत्नावली के चरित्र का उज्ज्वल चित्रण इस कृति में हुआ है। लोक मंगल हेतु अपने पति को त्यागने के लिए सन्नद्ध बह नारी सचमुच अद्वैत चरित्र बनाई है। अपनी पत्नी पर अत्यधिक आसक्ति तुलसीदास को रत्नावली ने भगवान श्री रामचन्द्र जी की ओर उन्मुख कर दिया। पति पत्नी की वाणी से प्रेरित हुए। रत्नावली ने अपना पति खो दिया लेकिन भारत वर्ष के लिए, हिंदी साहित्य के लिए अमर कृतियाँ मिल गईं। सचमुच रत्नावली का त्याग वियंविभक्त हेतु हुआ है। परिपक्वता रत्नावली के मानसिक संस्करण का उज्ज्वल वर्णन इस काव्य
में मिलता है। गोस्वामी तुलसीदास तथा रत्नाकरी के संबंध में प्रचलित कथा के आधार पर 
प्रस्तुत काहिय कथा-योजना कुई है। यह गंगा यो झंडों में है। प्रथम झंड में कुल २० छवि हैं।
दूसरे झंड में १५ विश्वास्य मुक्त-प्रगाह हैं।

४.५.२०.१ वस्तु-विवेचन

गोस्वामी तुलसीदास की धर्मपत्नी बदरिया ग्रामनीकारणी महोदय प्रमणक की कन्या 
थी। श्रीराम में उसके माता-पिता और स्वामियों का भरपूर प्रेम प्राम किया। माता की यह स्नेह 
पत्नी ने उन्हीं से कुछ-कुछ अपराध पर लिया। इतना ही नहीं वह कहती है- “मिल सकता 
है यहाँ जिसे जो, सो सब कुछ मुझको मिला।”

माता-पिता चाहते थे कि अपनी इस पुत्री के लिए उन्हें एक ऐसा वर मिल जाए जिसके 
जीवन में साविकता हो। उन्हें ऐसा वर मिल भी जाता है। तत्काली दीनबंधु का यह देख लेने में 
देर नहीं लगती कि जो बालक (भारतीय गोस्वामी तुलसीदास) मूर्त के अंग समझा जाकर 
अवसर करता है महाराणा दुरार राजा परवर्तक कर दिया गया वह वस्तुतः इतना समस्तमय संपन्न है
कि “चितामणि हो गरम ही उसके हुए।” मन के साथ लुढ़क ये भी पति की सहायमिनी 
पत्नी सहज भाव-से पति का निर्यात अवधिकार कर लेती है और -

“तब उनकी इस कन्या ने भी/अनदेखा वर वर लिया।”

इस प्रकार बारह बिंदुया रत्नावली अपने जीवन नाथ को समर्पित हो जाती है। यह 
सुखमय विवाहित जीवन परह वर्ष तक निर्धरपत समता रहता है। इसके उपरांत दंपति के जीवन 
में एक ऐसी घटना होती है जो पति की जीवन धरा को एक भिन्न विशा की ओर प्रवाहित कर 
लेती है।

रत्नावली पति से अनुमति पाकर भाई के घर राखी बौधने जाती है। वहाँ वह अपेक्षित 
से अधिक समय तक ठहर जाती है। नवाहनिक कथा-वाचन के लिए अनौत्य गया पति ग्यारह 
दिन के बाद घर लौटने पर वह देखता है कि पत्नी अभी तक घर नहीं लौटी। बेहतर पति 
अर्थात्ति में ही पत्नी से मिलने के लिए चल पड़ता है। अकस्मात तथा असमय में पति को वहाँ 
देखकर रत्नावली कुछ कुछ नहीं जाती है और कहती है-

“करते हो जो भगवान हाय ! इस चार दिनों के चाम को, 
नया सफल कर कोई उससे, पा सकता है राम को। 
धिक है मुझे और तुमको भी।”
यह कहकर रत्नावली अनुरक्त पति के उस अपनाते हाथ को स्वयं झटक देती है और इस प्रकार उसने ‘अपने हाथों आप अचानक, अपना सब कुछ खो दिया।’\\213\\214 इस प्रकार ‘रत्नावली’ इसी घटना के प्रभाव-परिणाम तथा तत्त्व अंतःअंतक की काय्य कथा है।

4.5.20.2 शीत-निर्पर्ण

‘रत्नावली’ नाथी अभाजन खंडकाय्य है अतः इसका प्रमुख चरित्र रत्नावली का है। अपने ही हाथों न्याय-पारे पति को खो बेठनेवाली रत्नावली अपवाद तथा विपद का जीवन बिता रही है। यह यथार्थ ही है कि उसकी रत्नसा-फौजी ने अपने ही जीवन-नाथ को अनावर-विष से डथ लिया था। किंतु संभवतः इसने ही महत्त्वपूण्य यथार्थ यह भी है कि उस समय उसे ‘स्वयं का कुछ भी बोध नहीं रहा।’ यह सत्य है कि जो स्वयं रत्नावली के पति के प्रति अनुराग के कारण उससे आख्या किया करती थी, वे ही आज उसे दोष देने लगी हैं। रत्नावली कहती है–

"पहले जो मुझ पर जलती थी, पति के प्रति अनुराग से, वही दोष देती है मुझ को, किन्तु उसके इस व्याख्या से।'\\215

परंतु उस तु-खबर घटना के रूप में जो कुछ घटा वह शायद अवशेषभावी ही था। क्योंकि–

"रक्षा सकती थी किंतु कहाँ तक, पकड़ हाथ! उस हाथ को।
करना कोई मदन काय्य था, उसे एक दिन अंत में,
फेले जिससे पुष्प और यश उनका देश-विंग था।'\\216

इसीलिए अपने कर-चित्त से अचानक बंधित हो जानेवाली रत्नावली आज निन विचलित चित्त से अविचल उसी कार्य का पथ जोह रही है। उसे विश्वास है कि यह हाथ लाप बास छोड़ जानेवाले उसके प्रथ पति ‘विश्वकुमुंदी होंगे करके आद्यविकास।’\\217\\218 रत्नावली जानती तथा मानती है कि उसके पति ने उससे आँख पुंडकर प्यार किया था। इसीलिए आज वह भी अपने उसी कर्मचारी की याद में विकल है। वह निरंतर नहीं कर पाती है कि अपना आक्रोश किस प्रकार व्यक्त करें। वह आज इतना ही चाहती है–

"बस एक बार आ जाओ, केंद्र लया और नव दर्शन स्वयं स्वर्ण पाओ।'\\219\\220

कल तक पति के प्यार में पलने वाली रत्नावली आज कंकरी भी नहीं रह गयी है। उसने स्वयं अपना जीवन-कोष रीता कर दिया है। इस संबंध में वास्तविकता यह है–

"भूल यदि मुझसे हुई तो एक हो, /शुल्क हो, वह या अशुल्क विवेक हो।'\\221
अतः यह जानकार रत्नावली को हर्ष तथा संतोष ही होता है-

"धन्य! संत पद पाकर स्वामी, /हुए राम के ही अनुरागी, /कुछ अपूर्व निर्माण-निरत है पाकर निरा-प्रसाद।" ॥३॥

रत्नावली इसे अपने जीवन की महत्त्व उपलब्धि मानती है। अब उसे उस काँव-काँव की भी कोई चिंता नहीं है जो उसके विषय में निरंतर की जाती रही है-

"किया करें इस मांस-पिंड पर अब कोई भी काँव-काँव, /रत्नावली तो जीत गई है निज सब कुछ का एक दाँव। /स्वार्थ ध्यान ही रोया-झौका, मैं अपना नहीं, उनकी का /देखा शुभ भविष्य, देखेंगा इस को पर-पर गाँव-गाँव।" ॥३॥

इस प्रकार उसी ‘शुभ-भविष्य’ ने ‘मानस’ की वह रस-धारा प्रवाहित कर दी जिसने सबको निर्मल कर दिया।

4.5.20.3 भाव-व्यंजना

विष्णुप्रिया की तरह ‘रत्नावली’ खंडकाव्य भी रसात्मकता की दृष्टि से परिपूर्ण काव्य है। इस काव्य में मुख्यतः वातस्य, शृंगार और कलरुण रस की व्यंजना हुई है। रत्नावली ने बाल्यकाल में माता-पिता के स्नेह पाया था, जिसमें वातस्य की झाँकी मिलती है। विवाह के बाद दास्य-जीवन में शृंगार रस पाया जाता है। तो तुलसी के वियुक्त होने पर रत्नावली परिवर्तन अवस्था में जीवन व्यतीत करती है, कहीं-कहीं विवाहवान शृंगार तथा कलरुण रस का भी परिपक्व इस काव्य में हुआ है।

4.6 समाहार

उपयुक्त विवेचन का निष्कर्ष यह है कि कविवर मैथिलीशारण गुप्तजी कुछत्र: प्रबंधकार कवि हैं और खंडकाव्यों की रचना-पद्धति उनकी अपनी प्रकृति सैली है। उन्होंने प्रबंधकार काव्यों के विविध रूप और प्रकार प्रस्तुत किए हैं तथा अपने खंडकाव्यों में भी अनेक रूपों का निदान किया है। गुप्तजी ने लगभग २२ खंडकाव्य लिखे हैं, जिनमें ‘उर्मिला’ अपूर्व कृति है। उसका बारह सर्ग प्रकाशित हो चुका है। ‘नल-दमयती’ अनुपलब्ध रचना है। उनके खंडकाव्य मुख्य रूप से पीरांकित, ऐतिहासिक और सामाजिक कोटियों में रखे जा सकते हैं। आधुनिक हिंदी खंडकाव्य के क्षेत्र में गुप्तजी का बड़ा भारी योगदान है। डॉ. उमा गोपाल लिखती हैं—

"परंतुपरमोक्षन के साथ नवीन की लतक और संस्कृति प्रेम ने गुप्तजी का राष्ट्र कवि के साथ-साथ हिंदी के खंडकाव्यों कारों में अग्रणी स्थान पाया है। हिंदी साहित्य में खंडकाव्यों के
बहुविध प्रयोग, प्राचीन-नवीन का ताना-बाना जो गुस्ती बुन पाए हैं उसे अभी तक कोई तोड़ नहीं पाया है। यही कारण है कि हिंदी साहित्य में खंडकाव्यकार के रूप में गुस्ती का विशिष्ट स्थान है। खंडकाव्यों की ऐसी धारा हिंदी में विशा कवि ही बहा पाए हैं। “श” गुस्ती ने उपदेशात्मक और आदर्श व्यंजक, नैतिकादि और वाशानिक, वस्तु-विन्दू और घटना-बहुल, विवरणात्मक और अभिन्यात्मक, आदर्श और सामाजिक चरित्र-चित्रणमय, घटना प्रधान और चरित्र प्रधान, वर्णनात्मक और वस्तु-व्यंजक, ख्यात-ृजत विषयक और सामाजिक जीवन संबंधी सर्ग-बाल और स्वतंत्र, विषय प्रधान और प्रणीतात्मक, विविध प्रकार के खंडकाव्यों का सुनन किया है। इसमें यह साम्य है कि सर्वत्र कवि ने प्रत्यक्ष जीवन का आद्यान किया है, नैतिक जीवनावस्था अथवा मानवता के उत्कर्ष की भावना को प्राधान्य दिया है। उन्होंने केवल वीर चरित्रों की अवतारणा ही नहीं की है, वरन् नारी की उच्चता का चित्रण किया है और साधु तथा सात्तिक व्यक्तियों को अपनी प्रशा समन्वित करण समर्पित की है। तप और ल्यान, प्रेम और करण तथा संप्रेस और साधना की उन्होंने मानवता की उत्थान मूलक प्रृवत्तियों के रूप में निरूपित किया है। “श” सारांश में गुस्ती ने ‘रंग में रंग’ से लेकर ‘रत्नालो’ तक के अनेक खंडकाव्यों में अनेक उपेक्षित पापों की चरित्र सृष्टि की। ऐतिहासिक सामाजिक विषयों पर २० से अधिक खंडकाव्य रचे हैं, परंतु शैली, तृप्ति और पात्र उसके अपने रंग हैं, यही उनकी मौलिकता है। इन कृतियों में पारस्परिक अंतर अवश्य है, पर वे एक ही कवि की विविध विकास अवस्थाओं की रचनाएँ होने की समानता का गुण भी उनमें प्रत्यक्ष विभाग है।
संक्षिप्त सूची

1. हिंदी काल्पनिक, डॉ. शंकुला दुबे, पृ. 101
2. हिंदी साहित्य कोश, (भाग-1), संपा. डॉ. धीरेंद्र वर्मा, पृ. 212
3. वही, पृ. 212
4. साहित्य-दर्पण, विश्वनाथ, परिप्रेक्ष्य 6, पृ. 328-329
5. वाङ्गक विपण, आचार्य विवाह प्रसाद मिश्र, पृ. 46
6. काव्य के रूप, गुलाबराय, पृ. 23
7. हिंदी काव्यशास्त्र का इतिहास, डॉ. भगीरथ मिश्र, पृ. 421
8. काव्यशास्त्र, डॉ. भगीरथ मिश्र, पृ. 517
9. साहित्य-विवेचन, शेषियार ‘सुमन’/योगेंद्रकुमार मलिक, पृ. 68
10. संस्कृत आलोचना, (खंड वो), आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ. 62
11. हिंदी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव, डॉ. सरनामसिंह शर्मा, पृ. 28
12. मैथिलीसरण गुप्त- व्यक्तित्व और काल्पनिक, डॉ. कमलाकांत पाठक, पृ. 292
13. हिंदी काल्पनिक, डॉ. शंकुला दुबे, पृ. 107
14. शास्त्रीय संस्कृत के सिद्धांत, (भाग-2), डॉ. गोविंद विमूल्यायत, पृ. 64
15. हिंदी साहित्य कोश, (भाग-1), संपा. डॉ. धीरेंद्र वर्मा, पृ. 233
16. साहित्यशास्त्र का पारंपरिक शब्द कोश, राजेंद्र धिवंदी, पृ. 80
17. आलोचना शास्त्र, पं. मोहनलाल पंत, पृ. 92
18. हिंदी साहित्य कोश, (भाग-1), संपा. डॉ. धीरेंद्र वर्मा, पृ. 212
19. हिंदी काल्पनिक, डॉ. शंकुला दुबे, पृ. 104
20. हिंदी खंडकाव्य : एक अध्ययन, (अन्धकारित शोधप्रबंध), डॉ. मदन केवलिया, पृ. 50
21. काल्पनिक काल्पनिक, डॉ. देवदत्त शर्मा, पृ. 161
22. मैथिलीसरण गुप्त, संपा. डॉ. तरहीसागर वाणियाग, पृ. 225
23. हिंदी खंडकाव्य : एक अध्ययन, डॉ. मदन केवलिया, पृ. 11
24. काल्पनिक काल्पनिक, डॉ. देवदत्त शर्मा, पृ. 162
25. काल्पनिक काल्पनिक, डॉ. भगीरथ मिश्र, पृ. 58
26. हिंदी काल्पनिक, डॉ. शंकुला दुबे, पृ. 80
27. वही, पृ. 103
28. आधुनिक हिंदी खंडकाव्य, डॉ. एस. तंकमणि अम्मा, पृ. 28
29. वही, पृ. 43
30. खंडकाव्यकार रामेश्वर शुक्ल ‘अंचल’ : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, डॉ. नीता सिंह, पृ. 43
हिंदी के मध्यकालीन खंडकाव्य, डॉ. सियाराम तिवारी, पृ. ५४-५५
मैथिलीकाव्य गुप-व्यक्ति और काव्य, डॉ. कमलाकांत पाठक, पृ. २९९
रंग में भाग, मैथिलीकाव्य गुप, निवेदन से
वही, भूमिका से
वही, पृ. ८
वही, पृ. १३
मैथिलीकाव्य गुप काव्य संदर्भ कोश, संपाद. डॉ. नगेंद्र, पृ. १५८
मैथिलीकाव्य गुप-व्यक्ति और काव्य, डॉ. कमलाकांत पृ. २९९
रंग में भाग, मैथिलीकाव्य गुप, पृ. २७
जयगढ वच, मैथिलीकाव्य गुप, पृ. २५
वही, पृ. ४१
वही, पृ. ४७
वही, पृ. १४
वही, पृ. ६
वही, पृ. २०
मैथिलीकाव्य गुप काव्य संदर्भ कोश, संपाद. डॉ. नगेंद्र, पृ. ९८
शकुंतला, मैथिलीकाव्य गुप, पृ. ८
वही, पृ. १६
शकुंतला, मैथिलीकाव्य गुप, पृ. २४
वही, पृ. ४७
वही, पृ. २८
मैथिलीकाव्य गुप काव्य संदर्भ कोश, संपाद. डॉ. नगेंद्र, पृ. १२९
शकुंतला, मैथिलीकाव्य गुप, पृ. ४८
हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास (खंड १), संपाद. डॉ. सुधाकर पादिय, पृ. ५००
मैथिलीकाव्य गुप काव्य कवि और भारतीय संस्कृति के आवश्यकता, डॉ. उमाकांत, पृ. २२
मैथिलीकाव्य गुप और रामचरित उपाध्याय, तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. सूर्यनाथ सिंह, पृ. ६१
मैथिलीकाव्य गुप-व्यक्ति और काव्य, डॉ. कामलाकांत पाठक, पृ. ३००
किसान, मैथिलीकाव्य गुप, पृ. ५
वही, पृ. ४०
मैथिलीकाव्य गुप-व्यक्ति और काव्य, डॉ. कामलाकांत पाठक, पृ. ३०१
मैथिलीकाव्य गुप काव्य संदर्भ कोश, संपाद. डॉ. नगेंद्र, पृ. ५१
319
<table>
<thead>
<tr>
<th>पन्ना</th>
<th>सिखलारण, मैथिलीशरण गुप्त, पृ. 109</th>
</tr>
</thead>
<tbody>
<tr>
<td>125</td>
<td>मैथिलीशरण गुप्त—व्यक्ति और काव्य, डा. कमलाकंत पाठक, पृ. 327</td>
</tr>
<tr>
<td>126</td>
<td>मैथिलीशरण गुप्त, काव्य संदर्भ कोश, संपा. डा. नंदेंद्र, पृ. 68</td>
</tr>
<tr>
<td>127</td>
<td>नहुं, मैथिलीशरण गुप्त, निवेदन से</td>
</tr>
<tr>
<td>128</td>
<td>मैथिलीशरण गुप्त—कवि और भारतीय संस्कृति के आलोचक, डा. उमाकंत, पृ. 40</td>
</tr>
<tr>
<td>129</td>
<td>मैथिलीशरण गुप्त, काव्य संदर्भ कोश, संपा. डा. नंदेंद्र, पृ. 50</td>
</tr>
<tr>
<td>130</td>
<td>नहुं, मैथिलीशरण गुप्त, पृ. 98</td>
</tr>
<tr>
<td>131</td>
<td>बही, पृ. 20</td>
</tr>
<tr>
<td>132</td>
<td>बही, पृ. 26</td>
</tr>
<tr>
<td>133</td>
<td>बही, पृ. 36</td>
</tr>
<tr>
<td>134</td>
<td>बही, पृ. 36</td>
</tr>
<tr>
<td>135</td>
<td>बही, पृ. 47</td>
</tr>
<tr>
<td>136</td>
<td>बही, पृ. 59</td>
</tr>
<tr>
<td>137</td>
<td>बही, पृ. 62</td>
</tr>
<tr>
<td>138</td>
<td>मैथिलीशरण गुप्त काव्य संदर्भ कोश, संपा. डा. नंदेंद्र, पृ. 138</td>
</tr>
<tr>
<td>139</td>
<td>नहुं, मैथिलीशरण गुप्त, पृ. 98</td>
</tr>
<tr>
<td>140</td>
<td>बही, पृ. 62</td>
</tr>
<tr>
<td>141</td>
<td>बही, पृ. 98</td>
</tr>
<tr>
<td>142</td>
<td>मैथिलीशरण गुप्त काव्य संदर्भ कोश—संपा. डा. नंदेंद्र, पृ. 164</td>
</tr>
<tr>
<td>143</td>
<td>मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के आलोचक, डा. उमाकंत, पृ. 52</td>
</tr>
<tr>
<td>144</td>
<td>नहुं, मैथिलीशरण गुप्त, पृ. 21</td>
</tr>
<tr>
<td>145</td>
<td>मैथिलीशरण गुप्त, डा. राधेश्याम शर्मा, पृ. 31</td>
</tr>
<tr>
<td>146</td>
<td>कुणाल गीत, मैथिलीशरण गुप्त, निवेदन से</td>
</tr>
<tr>
<td>147</td>
<td>मैथिलीशरण गुप्त—व्यक्ति और काव्य, डा. कमलाकंत पाठक, पृ. 562</td>
</tr>
<tr>
<td>148</td>
<td>सातत काव्य संस्कृति और दर्शन, डा. गार्डनस्कार सक्सेना, पृ. 26</td>
</tr>
<tr>
<td>149</td>
<td>मैथिलीशरण गुप्त—कवि और भारतीय संस्कृति के आलोचक, डा. उमाकंत, पृ. 82</td>
</tr>
<tr>
<td>150</td>
<td>कुणाल-गीत, मैथिलीशरण गुप्त, पृ. 90</td>
</tr>
<tr>
<td>151</td>
<td>बही, पृ. 11</td>
</tr>
<tr>
<td>152</td>
<td>बही, पृ. 18</td>
</tr>
<tr>
<td>153</td>
<td>बही, पृ. 189–190</td>
</tr>
<tr>
<td>154</td>
<td>मैथिलीशरण गुप्त—कवि और भारतीय संस्कृति के आलोचक, डा. उमाकंत, पृ. 133</td>
</tr>
</tbody>
</table>
195 मेधिलीशरण गुप्त-व्यक्ति और काव्य, डॉ. कमलाकंत पाठक, पृ. 553
196 कुणाल-गीत, मेधिलीशरण गुप्त, पृ. 21
197 वहीं, पृ. 30
198 वहीं, पृ. 36
199 मेधिलीशरण गुप्त-व्यक्ति और काव्य, डॉ. कमलाकंत पाठक, पृ. 553
200 कुणाल-गीत, मेधिलीशरण गुप्त, पृ. 55-58
201 वहीं, पृ. 60
202 वहीं, पृ. 100
203 वहीं, पृ. 136
204 मेधिलीशरण गुप्त-व्यक्ति और काव्य, डॉ. कमलाकंत पाठक, पृ. 554
205 कुणाल-गीत, मेधिलीशरण गुप्त, पृ. 34
206 वहीं, पृ. 120
207 वहीं, पृ. 30
208 मेधिलीशरण गुप्त का साहित्य, डॉ. ढारकाप्रसाद मितल, पृ. 34
209 काव्य और कर्मला, मेधिलीशरण गुप्त, आवेदन से पृ. 4
210 काव्य का इतिहास, खंड 2, अध्याय 14, पृ. 286
211 मेधिलीशरण गुप्त-काव्य संदर्भ कोश, संपा. डॉ. नयेन्द्र, पृ. 46
212 काव्य और कर्मला, मेधिलीशरण गुप्त, पृ. 13
213 वहीं, पृ. 17
214 काव्य और कर्मला, मेधिलीशरण गुप्त, पृ. 19
215 वहीं, आवेदन से, पृ. 4
216 वहीं, पृ. 52
217 वहीं, पृ. 53
218 अजित, मेधिलीशरण गुप्त, पृ. 21
219 वहीं, पृ. 65
220 साक्षर में काव्य संस्कृति और वर्तमान, डॉ. ढारिकाप्रसाद सच्चादेश, पृ. 21
221 मेधिलीशरण गुप्त-काव्य संदर्भ कोश संपा. डॉ. नयेन्द्र, पृ. 88
222 हिमीतच, मेधिलीशरण गुप्त, पृ. 9
223 वहीं, पृ. 14
224 वहीं, पृ. 15
225 वहीं, पृ. 19

322
210 जो, प. 78
211 जो, प. 78
212 जो, प. 91
220 मेघलीशरण गुप्त का साहित्य, डॉ. धारिकाप्रसाद मित्र, प. 42
221 मेघलीशरण गुप्त-काव्य संवर्धन कोष, संपा. डॉ. नागेश, प. 160
222 जो, प. 91
223 विज्ञानपीय, मेघलीशरण गुप्त, प. 16
224 सम्मेलन-पत्रिका, शक 19.09, प. 32
225 विज्ञानपीय, मेघलीशरण गुप्त, प. 31
226 जो, प. 78
227 जो, प. 76
228 जो, प. 89
229 मेघलीशरण गुप्त-व्यक्ति और काव्य, संपा. डॉ. कमलकांत पाठक, प. 337
230 सम्मेलन-पत्रिका, शक 19.09, प. 44
231 विज्ञानपीयां और उसका कवि मेघलीशरण गुप्त, जयकृष्ण अग्रवाल, प. 78
232 मेघलीशरण गुप्त-व्यक्ति और काव्य, डॉ. कमलकांत पाठक, प. 342-343
233 रत्नाकरी, मेघलीशरण गुप्त, प. 8
234 जो, प. 11
235 जो, प. 12
236 जो, प. 6
237 जो, प. 8
238 जो, प. 9
239 जो, प. 12
240 जो, प. 14
241 जो, प. 16
242 जो, प. 19
243 जो, प. 15
244 जो, प. 31
245 मेघलीशरण गुप्त, स्मारिका, ज्ञानावाङ, राजस्थान
246 मेघलीशरण गुप्त-व्यक्ति और काव्य, डॉ. कमलकांत पाठक, प. 343

324